॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

128

श्रीमच्छन्तनुप्रणीतः

फिट्सूत्रपाठः

'प्रकाशा'ख्य-संस्कृत-हिन्दीटीकाद्वयोपेतः

[फिट्सूत्रपाठोऽकाराद्यनुक्रमेण फिट्सूत्राणां सक्रमाङ्कसूची ग्रन्थस्थोदाहरणानामकाराद्यनुक्रमेणाऽनुक्रमणिका सङ्क्षेपबोधकसूचीति परिशिष्टचतुष्टयस्य च सङ्ग्रहेणोपबृंहितः]

व्याख्याकर्त्री

सोमलेखा

एम०ए० (संस्कृत)

भूमिका-लेखकः

प० ईश्वरचन्द्रः

उपाचार्यः, अध्यक्षश्च : संस्कृत-विभागे

हरियाणाप्रदेशान्तर्गतभिवानीनगरस्थराजकीय-

स्नातकोत्तरमहाविद्यालयीये

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391, 41530902

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2008 ई.

Rs 25.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117, गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

❖

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली-110002

•

मुद्रक

ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

वचसी द्वे

संस्कृत व्याकरण में शब्दों की व्युत्पत्ति की दृष्टि से दो मत प्राप्त होते हैं। प्रथम मत के अनुसार संस्कृत के सभी शब्द यौगिक हैं तथा उनमें प्रकृति-प्रत्यय का विभाग सम्भव है। इस मत के पोषक शाकटायन-प्रभृति वैयाकरण तथा गार्ग्य आदि निरुक्तकार हैं। दूसरा मत है—अव्युत्पत्ति पक्ष का। इस मान्यता के अनुसार संस्कृत भाषा में हजारों ऐसे शब्द प्रचलित हैं, जो धातुओं से निष्पन्न होने पर भी वे व्यवहार में उस मूल धातु का अर्थ न देकर किसी अन्य अर्थ में रूढ़ हो गये हैं। आचार्यों ने एतादृश सभी शब्दों को पृथक् कोटि में रखा है, जिन्हें रूढ़ कहा जाता है। अव्युत्पत्ति पक्ष के अनुसार रूढ़ शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय विभाग सम्भव नहीं है।

आचार्य पाणिनि ने व्युत्पत्तिपक्षानुसार प्रातिपदिकों का स्वरनिर्देश अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ में विस्तरेण एवं सूक्ष्मतापूर्वक किया है। इसके अतिरिक्त औणादिक शब्दों की स्वर-व्यवस्था भी उणादिसूत्रों के द्वारा निर्दिष्ट प्रकृति-प्रत्यय-विभाग के आधार पर हो जाती है। रूढ़ शब्दों में अर्थात् अव्युत्पन्न पक्ष का आश्रयण करने पर एतादृश शब्दों के स्वर-परिज्ञान के लिए आचार्य शन्तनु ने फिट्सूत्रों की रचना की है।

संस्कृत साहित्य में प्राप्त अनेक प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवादरूपेण कहा जा सकता है कि फिट्सूत्रों की रचना आचार्य शन्तनु ने की है[1]। अतः इन्हें शान्तनवसूत्र (यथा—'शन्तनुना प्रोक्तानि शान्तनवानि') भी कहा जाता है। ये फिट्सूत्र न केवल आचार्य पतञ्जलि से पूर्ववर्ती हैं, प्रत्युत आचार्य पाणिनि से भी पूर्ववर्ती हैं। फिट्सूत्रों में उपलभ्यमान प्रत्याहारों एवं सञ्ज्ञाओं के आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि ये सूत्र आचार्य पाणिनि के तन्त्र से प्राचीन हैं।

फिट्सूत्रपाठ एक लघुकाय ग्रन्थ है। इसमें चार पाद तथा कुल 87 सूत्र हैं। फिट्सूत्रों की अन्तरङ्ग-परीक्षा से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ अपूर्ण है। यथा—

(क) प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त अनेक सञ्ज्ञाओं के अर्थ बोधकसूत्र यहाँ उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिए फिष्, नप्, शिट् आदि सञ्ज्ञाओं के अर्थ ज्ञान के लिए कोई संकेत प्राप्त नहीं होता है।

---

1. द्र०—स पुनः शन्तनुप्रणीतः फिष् इत्यादिकम्। (पदम०)

(ख) प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टाध्यायी की तरह न तो ग्रन्थ के आरम्भ में वर्ण-समाम्नाय का उपदेश किया गया है तथा न ही सूत्रों में प्रयुक्त प्रत्याहारों (यथा—अष्, हय् आदि) के अर्थ के ज्ञान के लिए कोई निर्देश प्राप्त है।

उपर्युक्त हेतुओं से यह सिद्ध होता है कि आचार्य शन्तनु ने अवश्य ही स्वर-विषयक किसी बृहत् तन्त्र का उपदेश किया होगा जिसका एकभाग फिट्सूत्रपाठ के रूप में प्राप्त होता है।

अनेक विद्वानों ने फिट्सूत्रों पर वृत्तियाँ लिखी हैं जो सभी उपलब्ध नहीं हैं। संस्कृतव्याकरणशास्त्र (लेखक पं० युधिष्ठिर मीमांसक) के विवरण के अनुसार फिट्सूत्रों पर निम्नलिखित वृत्तियाँ अथवा वृत्तियों की व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं—

(i) अडियार के हस्तलेख संग्रह में एक अज्ञातनाम वैयाकरण की वृत्ति प्राप्त है।

(ii) संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के सरस्वती भवन संग्रहालय में फिट्सूत्रवृत्ति का हस्तलेख प्राप्त होता है।

(iii) विट्ठल ने प्रक्रिया-कौमुदी की टीका के स्वरप्रकरण में फिट्सूत्रों की एक संक्षिप्त व्याख्या की है।

(iv) आचार्य भट्टोजि दीक्षित ने फिट्सूत्रों पर दो व्याख्याएँ लिखी हैं—प्रथम शब्दकौस्तुभ के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद के स्वरप्रकरण में तथा द्वितीय सिद्धान्तकौमुदी की स्वरप्रक्रिया में।

(v) आचार्य भट्टोजि दीक्षित ने स्वयं वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीस्थ फिट्सूत्र-वृत्ति की एक व्याख्या प्रौढमनारमा में की है।

(vi) जयकृष्ण आचार्य ने वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के स्वर-वैदिक भाग की टीका के अन्तर्गत फिट्सूत्रों की दीक्षित कृत वृत्ति की एक व्याख्या लिखी है।

(vii) आचार्य नागेश भट्ट ने लघु एवं बृहत् दोनों शब्देन्दुशेखर नामक ग्रन्थों में भट्टोजि कृत वृत्ति की व्याख्या लिखी है।

(viii) श्रीनिवास यज्वा ने पाणिनि रचित स्वरविषयक सूत्रों पर स्वरसिद्धान्त चन्द्रिका नामक टीका लिखी है। इसके अन्तर्गत ही आचार्य यज्वा ने फिट्सूत्रों पर विस्तृत व्याख्या लिखी है।

इसके अतिरिक्त फिट्सूत्रों पर रचित अनेक वृत्तियाँ सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु उनका उल्लेख संस्कृत-साहित्य में इतस्ततः प्राप्त होता हैं।

सुदीर्घ काल से मेरे मानस में फिट्सूत्रों की आर्यभाषा में एक सरल-सुबोध टीका लिखने का विचार आ रहा था। मैंने अपनी दोनों पुत्रियों को व्याकरणशास्त्र का ज्ञान कराया था। मैंने अपनी कनीयसी आत्मजा आयुष्मती सोमलेखा, जो व्याकरणशास्त्र में अधिक दक्ष है, को फिट्सूत्रों की व्याख्या लिखने के लिए प्रेरित किया। उसने बालसुलभ-संकोचवशात् तथा निर्भर-स्नेहजनित चाञ्चल्यवशात् एक बार तो इस उत्तरदायित्व को निभा पाने में अपनी असमर्थता जताई, परन्तु इस दिशा में पुनः प्रोत्साहित किये जाने पर न केवल इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया, प्रत्युत आकार में स्वल्प होने पर भी वैदिक संस्कृत से सम्बद्ध होने के कारण इस गुरुतर कार्य को अत्यधिक अध्यवसाय पूर्वक सम्पन्न किया। मैं इसके लिए अपनी प्रिय पुत्री को स्नेहसिक्त आशीर्वाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि वह भविष्य में भी एवमेव गीर्वाणवाणी तथा माँ शारदा की सेवा में तत्पर रहेगी।

प्रस्तुत टीका की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. प्रत्येक सूत्र का अर्थ देकर उसकी व्याख्या की गई है।

2. प्रत्येक सूत्र का अर्थ शास्त्रीय विधि से (अर्थात् पदच्छेद, अनुवृत्ति/अधिकार को दर्शाते हुए) दिया गया है।

3. परिभाषाओं के कारण होने वाले परिवर्त्तन को यथास्थान दर्शाया गया है।

4. इस व्याख्या में केवल सूत्रार्थ पर ही दृष्टि को केन्द्रित नहीं रखा गया है, प्रत्युत पदे पदे भावाशय विस्फोरण एवं शोध पर ही मुख्य दृष्टि रही है।

5. कठिन स्थलों का पूरा-पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है।

6. उदाहरणों की सिद्धि प्रक्रिया को विस्तरेण दर्शाते हुए उस पर सूत्र को पूर्ण रूपेण घटाया गया है।

7. यह व्याख्या सार्वजनीन है।

इस व्याख्या में स्वरप्रक्रिया जैसे कठिन विषय को अत्यधिक सरल बनाया गया है। व्याख्या के अन्त में अनेक उपयोगी परिशिष्ट दिये गये हैं, जो न केवल छात्रवर्ग के लिए उपादेय हैं, प्रत्युत शोधकर्त्ताओं के लिए भी समानरूपेण ग्रहणीय हैं।

अनाथनाथ विश्वनाथ भगवान् का कोटिश: धन्यवाद प्रकट करता हुआ मैं प्राचीन एवं अर्वाचीन शास्त्रों के सम्पादनरूप तथा अनेक शास्त्रों की उपयोगी व्याख्याओं से संवलित ग्रन्थरत्नों के प्रकाशनरूप श्रेष्ठ कार्य के लिए बद्धपरिकर तथा शुद्ध एवं स्तरीय प्रकाशन के लिए ख्यातनाम चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली के स्वत्वाऽधिकारी महोदय, जो आज के भौतिकता प्रधान युग में भी माँ सरस्वती की सेवाभावनया उपासना कर रहे हैं, का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। आपने इस ग्रन्थ को सभी मुद्रण दोषों से रहित एवं सर्वाङ्ग सुन्दर बनाकर प्रकाशित किया है। अत: आपके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। अन्त में विद्वान् लोगों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि इस बालप्रयास को हृदय से सहेज कर मेरी प्रिय बेटी को प्रोत्साहित करें।

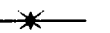
दि० 09.11.2007 ई० सन्
दीपपर्व, वि०सं० 2064
अभिजित्
1915, सेक्टर 13, भिवानी
(हरियाणा)

विद्वच्चरणाऽनुरागी
ईश्वरचन्द्र

॥ श्रीः ॥

फिट्सूत्रपाठः

'प्रकाशाख्य'-संस्कृत-हिन्दीटीकाद्वयोपेतः



प्रथमः पादः

(1) फिषोऽन्त उदात्तः [1.1]

पद.—फिषः 6.1, अन्तः 1.1, उदात्तः 1.1

प्र.—प्राचीनाऽऽचार्यैः प्रातिपदिकस्य फिड् इति सञ्ज्ञा कृता। फिषोऽन्त उदात्तस्वरो भवति।

उदा.—उच्चैः, नीचैः।

हिन्दी—उदात्त आदि स्वर वैदिक भाषा की एक प्रमुख विशेषता है। स्वर तीन होते हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। प्रातिशाख्य ग्रन्थों में स्वरविषयक महत्त्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। आचार्य पाणिनि ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में स्वर विषयक नियमों का सूक्ष्मतापूर्वक प्रणयन किया है। महर्षि पाणिनि ने जितना श्रम लौकिक शब्दों के अनुशासन में किया है, उससे कहीं अधिक श्रम स्वर विषयक प्रकरण में किया है। पाणिनि ने उदात्त आदि का लक्षण इस प्रकार दिया है—

(क) उच्चैरुदात्तः (पा. 1.2.29)।
(ख) नीचैरनुदात्तः (पा. 1.2.30)।
(ग) समाहारः स्वरितः (पा. 1.2.31)।

जहाँ तक वेदमन्त्रों के स्वराङ्कन का प्रश्न है, उदात्त के लिये कोई चिह्न नहीं होता है। अनुदात्त स्वर के लिये वर्ण के नीचे पड़ी रेखा (यथा—क॒) होती है। स्वरित के लिये वर्ण के शिर पर खड़ी रेखा (यथा—क॑) का प्रयोग होता है। कई संहिताओं में उदात्त आदि स्वरों के लिये संख्या (1,2,3 आदि) का प्रयोग होता है।

'फिष्' यह पूर्व आचार्यों के द्वारा की गई प्रातिपदिक की सञ्ज्ञा है। भाव यह है कि प्रातिपदिक का प्राचीन नाम 'फिष्' है। 'फिषः' षष्ठ्यन्त पद है। 'अन्तः' का अर्थ है—अन्त में स्थित अच्। चूँकि उदात्तादि धर्म अच् वर्णों के ही होते हैं। अतः यहाँ 'अच्' पद अर्थतः उपलब्ध होता है। फिट्सूत्रों के प्रणेता ने फिट्सूत्रों में अनेक प्राचीन सञ्ज्ञाओं का प्रयोग किया है। यथा—

प्राचीन सञ्ज्ञाएँ—
फिष् = प्रातिपदिक-फि० 1.1
नप् = नपुँसकलिङ्ग-फि० 3.12
स्फिग् = लुप्-फि० 2.16
यमन्वा = वृद्ध-फि० 2.18
अष् = अच्-फि० 2.19
हय् = हल्-फि० 2.25, 3.17

सूत्रार्थ—प्रातिपदिक का अन्तिम अच् उदात्त होता है। प्रकृत सूत्र के द्वारा अन्तिम अच् के विषय में स्वर-व्यवस्था की गई है। अब प्रश्न उठता है कि प्रातिपदिक के शेष अच् वर्णों की स्वर-व्यवस्था किस प्रकार हो? आचार्य पाणिनि ने इस विषय में एक व्यवस्था दी है कि शब्द के शेष अच् वर्ण अनुदात्त होते हैं। द्र.—'अनुदात्तं पदम् एकवर्जम्' (पा. 6.1.152)।

उदा.—(1) उच्चैः—'उच्चैः' एक प्रातिपदिक है। प्रकृत सूत्र से इसका अन्तिम अच् (ऐ) उदात्त हुआ। 'अनुदात्तं पदमेक.' से शेष अच् (अर्थात् उ) अनुदात्त हुआ।

नीचैः—पूर्ववत्।

(2) पाटलाऽपालङ्काऽम्बासागरार्थानाम् [1.2]

पद.—पाटलाऽपालङ्काऽम्बासागराऽर्थानाम् 6.3।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' (1.1) इत्यतः समग्रम् एव सूत्रम् अनुवर्त्तते।

प्र.—पाटलार्थानाम् अपालङ्कार्थानाम् अम्बार्थानां सागरार्थानाञ्च प्रातिपदिकानाम् अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—यहाँ 'फिषोऽन्त उदात्तः' का अविकल अनुवर्त्तन है। 'पाटलाऽपालङ्काऽम्बासागर' पद में द्वन्द्व समास है। इसके प्रत्येक पद के साथ 'अर्थ'

शब्द का सम्बन्ध है। तब इसका अर्थ होता है—पाटलार्थानाम्, अपालङ्कार्थानाम्, अम्बार्थानाम्, सागरार्थानाम्।

सूत्रार्थ—पाटलावाची, अपालङ्कवाची, अम्बावाची तथा सागरवाची प्रातिपदिकों का अन्तिम (अच्) उदात्त होता है।

शेष अच् वर्ण 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' से अनुदात्त हो जाते हैं।

उदा.—(1) पाटला—अन्तिम अच् (लकारस्थ आकार) उदात्त हुआ। शेष अच् (पकारस्थ आकार तथा टकारस्थ अकार) अनुदात्त हुए।

(2) फलेरुहा—यह 'पाटला' का वाचक है। पूर्ववत् अन्तिम अच् उदात्त हुआ।

(3) अपालङ्कः—ककारस्थ अकार उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए।

(4) आरग्वधः—अपालङ्कवाची 'आरग्वध' का अन्तिम अच् उदात्त हुआ।

(5) अम्बा—अन्तिम अच् (बकारस्थ आकार) उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(6) माता—अम्बावाची 'माता' शब्द का अन्त उदात्त हुआ 'उनर्वन्नन्तानाम्' (फि. 2.9) से आद्युदात्त प्राप्त था।

(7) सागरः—रेफस्थ अकार उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए। 'लघावन्ते.' (फि. 2.19) से गुरु अक्षर को उदात्त प्राप्त था।

(8) सरित्पतिः—सागरवाची 'सरित्पति' शब्द पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ।

अन्य उदा.—(1) पाटलिः—भावप्रकाश में 'पाटला' के निम्नलिखित पर्याय बताये हैं। यथा—

'पाटलिः पाटलाऽमोघा मधुदूती फलेरुहा।
कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी कालस्थाल्यलिवल्लभा'॥

(2) अमोघा, (3) मधुदूती, (4) कृष्णवृन्ता, (5) कुबेराक्षी, (6) कालस्थाली, (7) अलिवल्लभा। (8) व्याधिघातः, (9) सुरूपा, (10) पाकला।

भावप्रकाश में 'अपालङ्क' के निम्नलिखित पर्याय बताये हैं। यथा—

'आरग्वधो राजवृक्षः श याकश्चतुरङ्गुलः।
आरेवतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः'॥

(9) राजवृक्षः, (10) शृ याकः, (11) चतुरङ्गुलः, (12) आरेवतः, (13) कृतमालः, (14) सुवर्णकः ।

अमरकोश (1.10.1-2) में सागर शब्द के 13 पर्याय बताये हैं। यथा—

'समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः ।
उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः ॥1॥
रत्नाकरो जलनिधिर्यादः पतिरपाम्पतिः ।
तस्य प्रभेदाः क्षीरोदो लवणोदस्तथाऽपरे ॥2॥

(15) समुद्रः, (16) अब्धिः, (17) अकूपारः, (18) पारावारः, (19) उदन्वान्, (20) उदधिः, (21) सिन्धुः, (22) सरस्वान्, (23) अर्णवः, (24) रत्नाकरः, (25) जलनिधिः, (26) यादःपतिः, (27) अपाम्पतिः ।

(3) गेहार्थानामस्त्रियाम् [1.3]

पद.—गेहार्थानाम् 6.3, अस्त्रियाम् 7.1 ।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः समग्रमेव सूत्रम् अनुवर्त्तते ।

प्र.—स्त्रीलिङ्गवर्जितानां गेहार्थानां प्रातिपदिकानाम् अन्त उदात्तो भवति ।

हिन्दी—यहाँ पूर्ववत् 'फिषोऽन्त उदात्तः' का अविकल अनुवर्त्तन है। 'गेहार्थानाम्' का 'फिषः' के साथ अन्वय है। वचनविपरिणाम के द्वारा 'फिषः' को बहुवचनान्त बना लिया जाता है। यथा—'गेहार्थानां फिषाम्' । इसका अर्थ हुआ—गेहवाची प्रातिपदिकों का (अन्त उदात्त) होता है।

'अस्त्रियाम्' यह प्रतिषेध है। इसका अर्थ है कि स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान (गेहवाची) को छोड़कर।

सूत्रार्थ—गेहवाची प्रातिपदिकों का अन्त उदात्त होता है, परन्तु स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गेहवाची शब्द अन्त उदात्त नहीं होता है।

उदा.—अमरकोश (2.2.4-5) में 'गेह' के सोलह पर्याय बताये हैं—

'गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम् ।
निशान्तवस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम् ॥
गृहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः' ॥

इनमें प्रथम बारह नाम नपुँसकलिङ्ग हैं। शेष पुँल्लिङ्ग हैं।

(1) गृहम्—अन्त उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त। (2) गेहम्, (3) उदवसितम्, (4) वेश्म (वेशमन्), (5) सद्म (सद्मन्), (6) निकेतनम्, (7) निशान्तम्, (8) वत्स्यम् ('पत्स्यम्' इति पाठान्तरम्), (9) सदनम्, (10) भवनम्, (11) अगारम्, (12) मन्दिरम्, (13) गृहाः, (14) निकाय्यः (निकायः इत्यपि), (15) निलयः, (16) आलयः। अमरकोश (2.2.6) में निम्नलिखित चार नाम सभाभवन के दिये हैं। मतान्तर से ये चार नाम 'गृह' के ही हैं। इस प्रकार 'गृह' शब्द के कुल बीस नाम हैं। यथा—(17) वासः, (18) कुटी।

यह शब्द स्त्रीलिङ्ग है। सूत्र में 'अस्त्रियाम्' इस प्रकार प्रतिषेध किये जाने से यह अन्तोदात्त न हुआ। तब आद्युदात्त हुआ (यथा—कुटी)। शेष अनुदात्त हुआ। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (पा. 8.4.66) से उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हो जाता है। अतः टकारस्थ ईकार स्वरित हुआ। 'कुटि' यह ह्रस्व इकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग व स्त्रीलिङ्ग—दोनों लिङ्गों में प्रयुक्त होता है[1]। द्र.—'शष्कुलिराजिकुट्य.' (लि. 26)। लिङ्गानुशासन में 'कुटि' शब्द स्त्रीलिङ्ग बताया है।

(19) शाला—स्त्रीलिङ्ग होने से अन्तोदात्त न हुआ।

(20) सभा—पूर्ववत् आद्युदात्त।

(4) गुदस्य च [1.4]

पद.—गुदस्य 6.1, च—अव्य.।

अनु.—'गेहार्थानामस्त्रियाम्' (1.3) इत्यतो 'अस्त्रियाम्' अनुवर्त्तते। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यधिक्रियते।

प्र.—स्त्रीलिङ्गवर्जितस्य गुदप्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—'गेहार्थानामस्त्रियाम्' से 'अस्त्रियाम्' पद का अनुवर्त्तन है। 'फिषोऽन्त उदात्तः' का अधिकार पूर्ववत् है।

सूत्रार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'गुदा' शब्द को छोड़कर शेष गुद प्रातिपदिक अन्तोदात्त होता है।

उदा.—अमरकोश (2.6.73) में गुद शब्द के दो नाम बताये हैं। द्र.—

1. अ.को. 2.2.6 द्र.—मणिप्रभा टीका।
अ.को. 3.5.38 मूषा सृपाटी कर्कन्धूर्यष्टिः शाटी कटी कुटी।

'गुदं त्वपानं पायुर्ना वस्तिनाभेरधो द्वयोः'।

गुद तथा अपान शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं। पायु शब्द पुँल्लिङ्ग है। 'गुदा' शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

(1) गुदम्—पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ।

(2) अपानम्—पूर्ववत्।

अस्त्रियाम् का प्रयोजन है स्त्रीलिङ्ग गुदा शब्द अन्तोदात्त नहीं होता है। यथा—

(3) गुदा—अन्तोदात्त न हुआ। आद्युदात्त हुआ। शेष (अर्थात् दकारस्थ आकार) अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(5) ध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य [1.5]

पद.—'ध्यपूर्वस्य 6.1, स्त्रीविषयस्य 6.1।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इति समग्रम् एव सूत्रम् अत्राऽनुवर्त्तते।

प्र.—स्त्रीलिङ्गे वर्त्तमानस्य प्रातिपदिकस्य ध्यपूर्वो योऽन्त्योऽच् स उदात्तो भवति।

हिन्दी—'फिषोऽन्त उदात्तः' का अनुवर्त्तन है। 'ध्यपूर्वस्य' का अर्थ है—धकार है पूर्व में जिसके तथा यकार है पूर्व में जिसके। 'ध्यपूर्वस्य' का 'प्रातिपदिकस्य' के साथ अन्वय नहीं है। इसका सम्बन्ध 'अच्' के साथ है। 'स्त्री-विषयस्य' का अर्थ है—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान। इस पद का 'फिषः' के साथ अन्वय है। 'विषय' शब्द का ग्रहण नित्य स्त्रीलिङ्ग के लिये है।

सूत्रार्थ—नित्य स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है, यदि उसके अच् से पूर्व धकार अथवा यकार हो।

उदा.—(1) अन्तर्धा—अन्तर् पूर्वक 'धा' धातु से 'अङ्' प्रत्यय हुआ। 'आतश्चोपसर्गे' (पा. 3.3.106) से अङ् हुआ। 'अन्तःशब्दस्याङ्विधि.' (पा. 1.4.64 वा.) से अन्तर् की उपसर्ग सञ्ज्ञा। आतो लोपः, अचो रहाभ्यां द्वे, खरि च, स्त्रियाम्, टाप् हुआ। टाप् प्रत्ययान्त होने से अन्तर्धा 'शब्द स्त्रीविषय हुआ। इसका अन्त्य अच् धकारस्थ आकार है जिसके पूर्व में धकार है। प्रकृत सूत्र से अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए।

(2) छाया—नित्य स्त्रीलिङ्ग 'छाया' शब्द का अच् (आकार) है, जिसके अव्यवहित पूर्व में **यकार** है। अन्त उदात्त हुआ।

(3) माया—पूर्ववत्।

(4) जाया—पूर्ववत्।

विशेष—(क) सूत्रस्थ 'स्त्रीविषयस्य' का प्रयोजन है कि **नित्य स्त्रीलिङ्ग** जो प्रातिपदिक उसका धकार, यकारपूर्वक जो अच्, वह अन्तोदात्त होता है। यथा—

(1) बाह्यम्—'बहिषष्टिलोपो यञ् च' से यञ् प्रत्ययान्त होने से यह आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त के स्थान पर स्वरित हुआ।

(ख) 'स्त्रीविषयस्य' पद में **'विषय'** शब्द का प्रयोजन है कि **नित्य** स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक का धकारपूर्वक अथवा यकारपूर्वक जो अच् वह उदात्त होता है। यथा—

(2) इभ्या—यह स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक है तथा इसके अच् (आकार) से पूर्व **यकार** भी है, परन्तु यह नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं है। अतः अन्तोदात्त न हुआ। 'यतोऽनावः' (पा. 6.1.207) से आद्युदात्त हुआ। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' से शेष अच् अनुदात्त हुये—इभ्या। तब उदात्त से उत्तर अनुदात्त को 'उदात्तानुदात्तस्य स्वरितः' से स्वरित हुआ।

(3) क्षत्रिया—'क्षत्रिया' शब्द टाप् प्रत्ययान्त है। अच् (आकार) से पूर्व यकार है, परन्तु यह प्रातिपदिक नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं है। अतः अन्तोदात्त न हुआ। तब 'यान्तस्याऽन्त्यात् पूर्वम्' (फि. 3.13) से मध्योदात्त हुआ। क्षत्रिय—शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(6) खान्तस्याऽश्मादेः [1.6]

पद.—खान्तस्य 6.1, अश्मादेः 6.1।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्येतत् सूत्रम् अत्राऽनुवर्त्तते।

प्र.—अशकारादिर् अमकारादिर् यः खान्तः प्रातिपदिकस्तस्याऽन्तोदात्तो भवति।

हिन्दी—'अश्मादेः' तथा 'खान्तस्य'—दोनों पद समानाधिकरण हैं। 'अश्मादेः' का 'खान्तस्य' से अन्वय है। दोनों पद पूर्वशास्त्र से अनुवृत्त 'फिषः' पद के विशेषण हैं। 'अश्मादेः खान्तस्य फिषः' इसका अर्थ है—जिसके आदि में शकार अथवा मकार नहीं है, ऐसे खकारान्त प्रातिपदिक का (अन्तोदात्त होता है)।

सूत्रार्थ—जिसके अन्त में खकार हो परन्तु जिसके आदि में शकार अथवा मकार न हो, ऐसे प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) नखम्—अमरकोश (2.6.83) के अनुसार यह पुन्नपुँसक है। नख शब्द को 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' (फि. 2.6) से आद्युदात्त स्वर प्राप्त हुआ। यह खकारान्त प्रातिपदिक है। इसके आदि में न तो शकार है और न ही मकार है। प्रकृत सूत्र से अन्तोदात्त हुआ।

(2) सुखम्—'नञ्विषयस्याऽनिसन्तस्य' (फि. 2.3) से आद्युदात्त स्वर प्राप्त हुआ। प्रकृत से अन्तोदात्त हुआ।

(3) दुःखम्—'सुखम्' की तरह अन्तोदात्त हुआ।

(4) उखा—'खय्युवर्ण कृत्रिमाख्या चेत्' (फि. 2.8) से आद्युदात्त स्वर प्राप्त हुआ। प्रकृत से अन्तोदात्त हुआ। पात्रविशेष का नाम 'उखा' है।

विशेष—(क) सूत्रस्थ 'अश्मादेः' का प्रयोजन है कि शकार अथवा मकार नहीं हैं आदि में जिसके ऐसे खकारान्त प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है। यथा—

(1) शिखा—'शिखा' शब्द खकारान्त तो है, परन्तु इसके आदि में शकार है। अतः अन्तोदात्त न हुआ। 'शीङः खो निद् ह्रस्वश्च' (उणा. 5.25) से शीङ् धातु से 'ख' प्रत्यय तथा धातु को ह्रस्व आदेश होकर शिखा शब्द निष्पन्न होता है। ख प्रत्यय अतिदेश से नित् है। अतः 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (पा. 6.1.194) से शिखा शब्द आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित हुआ। नित्त्वकरण के अन्तरङ्ग कार्य होने से टाप् की उत्पत्ति से पूर्व 'स्वाङ्गशिटाम्' (फि. 2.6) से स्वर प्राप्त था।

(2) मुखम्—मुख शब्द खकारान्त तो है, परन्तु इसके आदि में मकार है। 'अश्मादेः' इस प्रकार प्रतिषेध किये जाने से प्रकृत सूत्र की प्राप्ति न हुई। 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' (फि. 2.6) से आद्युदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित हुआ।

(7) हिष्ठवत्सरतिशत्थान्तानाम् [1.7]

पद.—हिष्ठवत्सरतिशत्थाऽन्तानाम् 6.3।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' एतत् समग्रम् एवाऽधिक्रियते।

प्र.—हिष्ठशब्दान्तस्य वत्सरशब्दान्तस्य तिशब्दान्तस्य शत्शब्दान्तस्य थान्तस्य प्रातिपदिकस्याऽन्तोदात्तो भवति।

हिन्दी—'हिष्ठवत्सरतिशत्था.' में द्वन्द्व समास है। 'अन्त' शब्द का द्वन्द्व समास के प्रत्येक पद के साथ सम्बन्ध है। हिष्ठ और वत्सर—ये दो शब्द हैं। 'ति', 'शत्'—ये दो प्रत्यय हैं। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इसका अधिकार है।

सूत्रार्थ—'हिष्ठ, वत्सर, ति, शत् तथा थ—ये हैं अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) बंहिष्ठ—'अतिशयेन बहुलः' इस अर्थ में इष्ठन् प्रत्यय हुआ। बहुल इष्ठन्—'प्रियस्थिरस्फिरो.' (पा. 6.4.157) से 'बंहि' आदेश। इष्ठन् प्रत्ययान्त होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (पा. 6.1.191) से आद्युदात्त स्वर प्राप्त हुआ, इसे बाधकर प्रकृत से अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये।

(2) परिवत्सरः—पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ।

(3) संवत्सरः—यहाँ अव्यय पूर्वपद प्रकृतिस्वर का बाध होता है। शेखरकार (वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 494) लिखते हैं कि 'सम्पूर्वाच्चित्' से 'सर' प्रत्यय चित् है। इससे अन्तोदात्तता सिद्ध है।

(4) अशीतिः—'लघावन्ते.' (फि. 2.19) से प्राप्त स्वर को बाध कर अन्तोदात्त होता है।

(5) सप्ततिः—सप्तदशतः परिमाणम् अस्य—'षड्त्रिंविंशति.' (पा. 5.1.58)। पूर्ववत् अन्तोदात्त स्वर हुआ।

(6) पञ्चाशत्—पञ्चदशतः परिमाणम् अस्य—पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ।

(7) प्रभृथः—पूर्ववत्।

(8) दक्षिणस्य साधौ [1.8]

पद.—दक्षिणस्य 6.1, साधौ 7.1।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्येतद् अनुवर्त्तते।

प्र.—साधुशब्दोऽत्र प्रावीण्यार्थे प्रयुक्तः। प्रावीण्यार्थे गम्यमाने दक्षिणस्य प्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—यहाँ दक्षिण शब्द प्रावीण्य अर्थ में प्रयुक्त है। सूत्र का अर्थ इस प्रकार है—प्रावीण्य अर्थ में वर्त्तमान 'दक्षिण' प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) वीणायां दक्षिणः—अन्तोदात्त स्वर हुआ। शेष अनुदात्त हुये।

विशेष—'साधौ' पद का प्रयोजन है कि **प्रावीण्य** अर्थ में ही दक्षिण शब्द को अन्तोदात्त होता है। यथा—

(1) दक्षिणः करः—यहाँ दक्षिण शब्द प्रावीण्य अर्थ में वर्त्तमान नहीं है, अपितु 'दाहिना' इस अर्थ में वर्त्तमान है। 'पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसञ्ज्ञायाम्' (पा. 1.1.33) से व्यवस्था में दक्षिण शब्द की सर्वनाम सञ्ज्ञा हुई। 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' (फि. 2.6) से आद्युदात्त हुआ—दक्षिणुः। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हो गया—दक्षिणः।

(9) स्वाङ्गाख्यायामादिर्वा [1.9]

पद.—स्वाङ्गाख्यायाम् 7.1, आदिः 1.1, वा—अव्य.।

अनु.—'दक्षिणस्य साधौ' (फि. 1.8) इत्यतो 'दक्षिणस्य' इति पदम् अनुवर्त्तते। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः 'फिषः', 'उदात्तः' इति पदद्वयम् अनुवर्त्तते।

प्र.—स्वाङ्गे वाच्ये दक्षिणप्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो विकल्पेन भवति। एवं पक्षे अन्तोदात्तो भवति।

हिन्दी—काशिका (पा. 4.1.54) में स्वाङ्ग शब्द का लक्षण निम्न प्रकार से दिया है—

'अद्रवं मूर्त्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।
अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तस्य चेत्तत्तथायुतम्' ॥

कारिका का अर्थ इस प्रकार है—

अद्रवम् अर्थात् जो तरल न हो। 'कफ' तथा 'स्वेद' तरल पदार्थ हैं। अतः ये स्वाङ्ग नहीं हैं।

मूर्त्तिमत् अर्थात् जो दृश्य हो। यथा—'ज्ञान' दृश्य नहीं है। अतः स्वाङ्ग नहीं है।

प्राणिस्थम् अर्थात् जो प्राणियों में स्थित हो। केश, मुख, कर आदि स्वाङ्ग हैं।

अविकारजम्—अर्थात् जो विकार से उत्पन्न न हो। 'शोफ' विकारज है, अतः स्वाङ्ग नहीं है।

अतत्स्थम् अर्थात् चाहे वर्त्तमान में प्राणियों में स्थित न हो परन्तु 'तत्र दृष्टम्' अर्थात् प्राणियों में देखा अवश्य गया हो। 'तस्य चेत्तत्तथायुतम्' अर्थात् जैसा यह स्वाङ्ग प्राणी में स्थित होता है, यदि वैसा अन्यत्र स्थित हो तो उसे स्वाङ्ग कहा जायेगा।

'वा' का अर्थ है—विकल्प से प्रवृत्त होना। एक पक्ष में कार्य का होना तथा दूसरे पक्ष में कार्य का न होना 'विकल्प' कहलाता है। प्रथम पक्ष में आद्युदात्त होता है। द्वितीय पक्ष में 'फिषोऽन्त उदात्तः' से अन्तोदात्त होता है।

सूत्रार्थ—स्वाङ्ग वाच्य रहने पर दक्षिण प्रातिपदिक को आद्युदात्त विकल्प से होता है तथा पक्ष में अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) दक्षिणो बाहुः—'बाहु' स्वाङ्ग है। स्वाङ्ग वाच्य रहते दक्षिण शब्द को आद्युदात्त हुआ। शेष निघात हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) दक्षिणो बाहुः—पक्ष में अन्तोदात्त हुआ। शेष पूर्ववत् निघात हुआ।

विशेष—(क) सूत्र में 'आख्या' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन है कि जिसके विषय में कहा जा रहा है, उसका ही दक्षिण होना चाहिये। उदाहरण के लिये सामने बैठे हुये व्यक्ति का वाम भाग भी दक्षिण भाग बन जाता है। उस दशा में विकल्प से आद्युदात्त स्वर न हो, एतदर्थ 'आख्या' **शब्द** का ग्रहण है।

(ख) सूत्र में 'स्वाङ्गाख्यायाम्' पद का प्रयोजन है कि **स्वाङ्ग** वाच्य रहते दक्षिण शब्द को विकल्प से आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) वीणायां दक्षिणः—यहाँ दक्षिण शब्द है, परन्तु स्वाङ्ग वाच्य नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ। 'दक्षिणस्य साधौ' से अन्तोदात्त हुआ।

(10) छन्दसि च [1.10]

पद.—छन्दसि 7.1, च—अव्य.।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः 'फिषः' 'उदात्त'श्चेति पदद्वयं, 'दक्षिणस्य साधौ' इत्यतो 'दक्षिणस्ये'ति, 'स्वाङ्गाख्यायामादिर्वा' (1.9) इत्यत 'आदिर्वा' इति पदद्वयम् अनुवर्त्तन्ते।

प्र.—छन्दसि विषये दक्षिणस्य प्रातिपदिकस्य विकल्पेनादिरुदात्तो भवति।

हिन्दी—'छन्दसि' का अर्थ है—'वेद के विषय में'। 'दक्षिणस्य', 'फिषः', 'आदिः', 'वा' तथा 'उदात्तः'—इन पदों का अनुवर्त्तन है। प्रकृत से आद्युदात्त विकल्प से होता है। पक्ष में 'फिषोऽन्त उदात्तः' से अन्तोदात्त होता है।

सूत्रार्थ—वेद के विषय में 'दक्षिण' प्रातिपदिक का आद्युदात्त विकल्प से होता है। पक्ष में अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) दक्षिणः—प्रकृत से विकल्प से आद्युदात्त हुआ। शेष निघात हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) दक्षिणः—पक्ष में अन्तोदात्त हुआ।

(11) कृष्णस्याऽमृगाख्या चेत् [1.11]

पद.—कृष्णस्य 6.1, अमृगाख्या 1.1, चेत्—अव्य.।

अनु.—'छन्दसि च' इत्यतश्छन्दसीत्यनुवर्त्तते। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्येतद् अनुवर्त्तते।

प्र.—मृगार्थे अगम्यमाने वेदविषये कृष्णस्य प्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—'अमृगाख्या' का अर्थ है—'मृग' अर्थ वाच्य न हो। 'फिषोऽन्त उदात्तः' का अविकल अनुवर्त्तन है। 'छन्दसि' पद भी अनुवृत्त है।

सूत्रार्थ छन्दस् के विषय में मृग वाच्य न हो तो 'कृष्ण' शब्द को अन्त उदात्त होता है।

उदा.—(1) कृष्णानां व्रीहीणाम्—'मृग' वाच्य नहीं है। अतः अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ। कृष्णानाम्—कृष्णानाम्।

(2) कृष्णो नौनाव वृषभो यदीयम् (ऋ. 1.79.2)—पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ।

विशेष—'अमृगाख्या' का प्रयोजन है कि '**मृग**' अर्थ **वाच्य** न रहने पर ही 'कृष्ण' शब्द को अन्तोदात्त होता है। यथा—

(1) कृष्णौ रात्र्यै—यहाँ मृगाख्या है, अतः अन्तोदात्त न हुआ। 'वर्णानां

तणतिनितान्त.' (फि. 2.10) से आद्युदात्त हुआ—कृष्ण:। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(12) वा नामधेयस्य [1.12]

पद.—वा-अव्य., नामधेयस्य 6.1।

अनु.—'छन्दसि चे'त्यतश्छन्दसीत्यनुवर्त्तते। 'कृष्णस्याऽमृगाख्या चेदि'-त्यतः कृष्णस्येत्यनुवर्त्तते। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इति समग्रम् अधिक्रियते।

प्र.—वेदविषये नामधेयस्य कृष्णस्य प्रातिपदिकस्य अन्त उदात्तो वा भवति।

हिन्दी—'छन्दसि' तथा 'कृष्णस्य'—इन पदों का अनुवर्त्तन है। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इसका अधिकार है।

सूत्रार्थ—छन्दस् के विषय में 'कृष्ण' प्रातिपदिक को विकल्प से अन्तोदात्त होता है। पक्ष में यथाप्राप्त आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) अयं वां कृष्णो अश्विना कृष्णं ऋषिः—प्रथम 'कृष्ण' शब्द नामधेय होने से इसको विकल्प से अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित हुआ। पक्ष में कृष्ण शब्द पूर्ववत् आद्युदात्त रहा।

(13) शुक्लगौरयोरादिः [1.13]

पद.—शुक्लगौरयोः 6.2, आदिः 1.1।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः 'फिषः' 'उदात्तः' चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते।

प्र.—शुक्लगौरयोः प्रातिपदिकयोर् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—यहाँ 'फिषः' पद का अनुवर्त्तन है। वंच [illegible]परिणाम के द्वारा इसे द्विवचनान्त 'फिषोः' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—शुक्ल और गौर प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है।

कुछ व्याख्याकार यहाँ पूर्वशास्त्र से 'नामधेयस्य' का अनुवर्त्तन मानते हैं। 'नामधेयस्य' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त बना लिया जाता है। तब नामधेय शुक्ल और गौर प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है। नामधेय से अन्यत्र

(15) पृष्ठस्य च [1.15]

पद.—पृष्ठस्य 6.1, च—अव्य.।

अनु.—'अङ्गुष्ठोदकबकवशानां.' इत्यतश्छन्दस्यन्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः फिषः उदात्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते।

प्र.—छन्दसि विषये पृष्ठप्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—छन्दस् के विषय में 'पृष्ठ' प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है। लोक में आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम्—अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

विशेष—अनुवृत्त 'छन्दसि' पद का प्रयोजन है कि वेद के विषय में ही पृष्ठ प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है। लोक में 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' से आद्युदात्त होता है। यथा—

(2) पृष्ठम्—आद्युदात्त हुआ। पृष्ठम्—शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ। शेखरकार (वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 495) के अनुसार प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'मृष्टस्य च' पाठान्तर प्राप्त होता है। आचार्य भट्टोजि दीक्षित (श.कौ.भाग 2, पृ. 23) प्रकृत सूत्र को लोक से सम्बद्ध मानते हैं। द्र.—"भाषामात्रविषयं सूत्रमिदं 'प्रागेकादशभ्योऽछन्दसि' (पा. 5.3.49), 'झल्युपोत्तमम्' (पा. 6.1.180), 'विभाषा भाषायाम्' (पा. 6.1.181) इत्यादिवत्"।

(16) अर्जुनस्य तृणाख्या चेत् [1.16]

पद.—अर्जुनस्य 6.1, तृणाख्या 1.1, चेत्—अव्य.।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः फिष उदात्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते। 'अङ्गुष्ठोदकबकवशानां.' इत्यतोऽन्त इत्यनुवर्त्तते।

प्र.—तृणार्थे गम्यमानेऽर्जुनस्य प्रातिपदिकस्य अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—'आख्या' का अर्थ है—वाच्य। सूत्रार्थ इस प्रकार है—यदि तृण अर्थ गम्यमान हो तो अर्जुन प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) अर्जुनं तृणम्—अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये।

विशेष—'तृणाख्या' का प्रयोजन है कि तृण अर्थ में वर्त्तमान अर्जुन शब्द को अन्तोदात्त होता है। यथा—

शुक्ल तथा गौर प्रातिपदिकों को अन्तोदात्त होता है। यथा—(1) (सरो) गौरो यथा पिब।

आचार्य भट्टोजि दीक्षित के अनुसार यहाँ पूर्वशास्त्र से 'वा' पद का अनुवर्त्तन होता है[1]—तब शुक्ल और गौर प्रातिपदिकों को आद्युदात्त विकल्प से होता है। पक्ष में अन्तोदात्त होता है। कुछ आचार्य यहाँ नित्य आद्युदात्त मानते हैं।

उदा.—(1) शुक्लः। शुक्ल शब्द को आद्युदात्त हुआ—शुक्लः। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) गौरः पूर्ववत्।

(14) अङ्गुष्ठोदकबकवशानां छन्दस्यन्तः [1.14]

पद.—अङ्गुष्ठोदकबकवशानाम् 6.3, छन्दसि 7.1, अन्तः 1.1।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः फिषः उदात्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते।

प्र.—छन्दसि विषये अङ्गुष्ठोदकबकवशानां प्रातिपदिकानां अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—'फिषः' पद का अनुवर्त्तन है। वचनविपरिणाम के द्वारा इसे बहुवचनान्त (फिषाम्) बना लिया जाता है। 'छन्दसि' का अर्थ है—छन्दस् के विषय में। पूर्वशास्त्र से अनुवृत्त 'आदिः' पद की निवृत्ति के लिये 'अन्तः' पद का ग्रहण है।

सूत्रार्थ—छन्दस् के विषय में अङ्गुष्ठ, उदक, बक तथा वश—इन प्रातिपदिकों को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) अङ्गुष्ठः—अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। 'स्वाङ्गानां कुर्वादीनाम्' (फि. 3.3) से द्वितीय अच् को उदात्त स्वर प्राप्त था।

(2) उदकम्—पूर्ववत्। 'कर्दमादीनां च' (फि. 3.10) से आद्युदात्त तथा द्वितीयाच् को उदात्त स्वर पर्यायेण प्राप्त थे।

(3) बकः—पूर्ववत्। 'प्राणिनां कुपूर्वम्' (फि. 2.7) से आद्युदात्त प्राप्त था।

(4) वशा—पूर्ववत्। 'वशा' शब्द का ग्रहण नियमार्थ है।

---

1. वै.सि.कौ. भाग 4 पृ. 495 वेत्यनुवर्त्तत इति युक्तम्।

(1) अर्जुनो नाम वृक्षः—यहाँ तृणाख्या नहीं है। अन्तोदात्त न हुआ। 'उनर्वन्नन्तानाम्' (फि. 2.9) से आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये—अर्जुनः। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(17) अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत् [1.17]

पद.—अर्यस्य 6.1, स्वाम्याख्या 1.1, चेत्—अव्य.।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः फिष उदात्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते। 'अङ्गुष्ठोदकबकवशानां.' इत्यतोऽन्तश्चेति पदम् अनुवर्त्तते।

प्र.—स्वाम्यर्थे गम्यमानेऽर्यस्य प्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—स्वामी अर्थ में वर्त्तमान अर्य प्रातिपदिक को अन्तोदात्त होता है।

'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (पा. 3.1.103) से स्वामी तथा वैश्य—इन अर्थों में यत् प्रत्यय होकर 'अर्य' शब्द निपातनसिद्ध है। तब 'यतोऽनावः' (पा. 6.1.207) से इसे आद्युदात्त स्वर प्राप्त होता है। इसे बाध कर प्रकृत सूत्र के द्वारा स्वामी अर्थ में वर्त्तमान 'अर्य' शब्द को अन्तोदात्त होता है। वार्त्तिककारों[1] ने भी स्वामी अर्थ में वर्त्तमान अर्य शब्द को अन्तोदात्त स्वर का समर्थन किया है।

विशेष—'स्वाम्याख्या' का प्रयोजन है कि **स्वामी अर्थ में वर्त्तमान** अर्य शब्द अन्तोदात्त होता है। यथा—

(1) अर्यो वैश्यः—यहाँ 'अर्यः' शब्द स्वामी अर्थ में नहीं है। अतः अन्तोदात्त न हुआ, आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ। यहाँ 'यतोऽनावः' से आद्युदात्त हुआ है।

(18) आशाया अदिगाख्या चेत् [1.18]

पद.—आशायाः 6.1, अदिगाख्या 1.1, चेत्—अव्य.।

अनु.—अत्र फिषः, अन्तः, उदात्तः इत्येतानि पदानि अनुवर्त्तन्ते।

प्र.—आशाप्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो भवति, दिगाख्या चेन्न भवति।

हिन्दी—दिगर्थ में जो वर्त्तमान नहीं है, ऐसे आशा प्रातिपदिक को अन्तोदात्त

1. द्र.—स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च वक्तव्यम्। (का. 3.1.103)

होता है। 'आशा' शब्द के अनेक अर्थ हैं। दिगर्थ में वर्त्तमान आशा शब्द को अन्तोदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) आशा—अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

विशेष—'अदिगाख्या' का प्रयोजन है कि **दिशा अर्थ के गम्यमान न** रहते ही आशा शब्द को अन्तोदात्त स्वर होता है। यथा—

(इन्द्र) आशाभ्यस्परि (ऋ. 2.41.12)—यहाँ आशा शब्द दिगर्थ में वर्तमान है, अतः अन्तोदात्त न हुआ। आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(19) नक्षत्राणामाब्विषयाणाम् [1.19]

पद.—नक्षत्राणाम् 6.3, आब्विषयाणाम् 6.3।

अनु.—फिषः उदात्तः अन्तः इति अनुवर्त्तन्ते।

प्र.—आब्विषयाणां नक्षत्रवाचिनां प्रातिपदिकानाम् अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—'आप्' के द्वारा टाप्, डाप्, चाप्—इन स्त्रीप्रत्ययों का ग्रहण होता है। एक परिभाषा है—'निरनुबन्धकग्रहणेन साऽनुबन्धकस्य ग्रहणम्' अर्थात् अनुबन्ध रहित का निर्देश होने पर अनुबन्ध सहितों का ग्रहण होता है।

'फिषः' का अनुवर्त्तन है। वचनविपरिणाम के द्वारा इसे बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—आप्-विषयक नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों को अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) आश्लेषा—अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। यहाँ 'लघावन्ते द्वयोश्च बह्व.' (फि. 2.19) से गुरु वर्ण को उदात्त प्राप्त था।

(2) अनुराधा—अन्तोदात्त हुआ। यहाँ भी पूर्ववत् गुरु वर्ण को उदात्त प्राप्त था।

(3) श्रविष्ठा—पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ। यह इष्ठन् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। अतः 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (पा. 6.1.193) से आद्युदात्त प्राप्त था।

(4) धनिष्ठा—इष्ठन् प्रत्ययान्त होने से पूर्ववत् आद्युदात्त प्राप्त था, इसे बाधकर अन्तोदात्त हुआ।

(5) ज्येष्ठा—पूर्ववत्।

विशेष—(क) 'नक्षत्राणाम्' का प्रयोजन है कि आप् विषयक **नक्षत्रवाची** को ही अन्तोदात्त होता है। यथा—

(1) खट्वां—खट्वा शब्द नक्षत्रवाची नहीं है, अतः अन्तोदात्त नहीं हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(ख) 'आब्विषयाणाम्' का प्रयोजन है कि **आप्-विषयक** नक्षत्रवाची शब्द को अन्तोदात्त होता है। यथा—

(2) अश्विनी—अश्विनी शब्द नक्षत्रवाची तो है, परन्तु आप्विषयक नहीं है। अतः अन्तोदात्त न हुआ। आद्युदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(20) न कुपूर्वस्य कृत्तिकाख्या चेत् [1.20]

पद.—न—अव्य., कुपूर्वस्य 1.6, कृत्तिकाख्या 1.1, चेत्—अव्य.।

अनु.—'नेक्षत्रणामाब्विषयाणाम्' इत्यतः समग्रम् एव सूत्रम् अनुवर्त्तते। फिष उदात्तोऽन्तश्चेति पदत्रयमत्राऽनुवर्त्तते।

प्र.—कृत्तिकार्थे वर्त्तमानस्य आब्विषयस्य नक्षत्रवाचिनः कवर्गपूर्वस्य प्रातिपदिकस्याऽन्त उदात्तो न भवति।

हिन्दी—'कु' का अर्थ है—कवर्ग। 'कुपूर्व' का अर्थ है—कवर्ग है पूर्व में जिस के। कृत्तिकाख्या अर्थात् कृत्तिकावाची। नक्षत्राणाम्, आबविषयाणाम्; अतः, उदात्तः, फिषः—इनका अनुवर्त्तन है। 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है। यहाँ अन्तोदात्त स्वर का निषेध किया गया है। 'कुपूर्वस्य' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'कुपूर्वाणाम्' बना लिया जाता है। प्रकृत सूत्र का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है। यथा—

(क) 'कुपूर्वस्य' का अन्वय 'फिषः' के साथ करके—आप्विषयक नक्षत्र-वाची प्रातिपदिक जिसके पूर्व में कवर्गीय वर्ण हो, उसे अन्तोदात्त नहीं होता है, यदि कृत्तिका अर्थ वाच्य हो।

इस अर्थ के अनुसार 'कृत्तिका नक्षत्रम्' उदाहरण है। यहाँ कृत्तिका अर्थ वाच्य है। कृत्तिका शब्द नक्षत्रवाची है तथा आप् विषयक है। इसके पूर्व में ककार है, जो कवर्गीय वर्ण है। अतः यथाप्राप्त अन्तोदात्त न हुआ, आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(ख) 'कुपूर्वस्य' का अन्वय 'आब्विषयाणाम्' के साथ करके—कवर्गीय वर्ण है पूर्व में जिसके ऐसा आप्, तद्विषयक नक्षत्रवाची प्रातिपदिक को अन्तोदात्त नहीं होता है, यदि कृत्तिका अर्थ गम्यमान हो।

इस अर्थ के अनुसार 'आर्यिका' तथा 'बहुलिका'—ये उदाहरण हैं[1]।

आर्यक शब्द से टाप् होता है। 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्व.' सूत्र लगकर 'आर्यिका' बनता है। 'आर्यिका' शब्द कृत्तिकावाची है। वह नक्षत्रवाची भी है। आप् से पूर्व कवर्गीय वर्ण ककार है। अतः अन्तोदात्त का निषेध हुआ। आद्युदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार 'बहुलिका' को अन्तोदात्त का निषेध होता है।

उदा.—कृत्तिका नक्षत्रम्, (2) आर्यिका, (3) बहुलिका।

विशेष—(क) 'कुपूर्वस्य' का प्रयोजन है कि **कवर्गीय वर्ण है पूर्व में** जिसके ऐसे आब् विषयक और नक्षत्रवाची प्रातिपदिक को अन्तोदात्त नहीं होता है, यदि कृत्तिका अर्थ गम्यमान हो। यथा—

(1) बहुला—यह आब् विषयक है तथा नक्षत्रवाची भी है। यहाँ कृत्तिका अर्थ गम्यमान है परन्तु इसके पूर्व में कवर्गीय वर्ण नहीं है। अतः अन्तोदात्त का निषेध नहीं हुआ—बहुला। शेष अनुदात्त हुये।

(ख) सूत्र में 'आख्या' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन है कि निम्नलिखित में प्रकृत से निषेध न हो। यथा—

(2) कृत्तिका माणविका—कृत्तिकासु जाता माणविका कृत्तिका। यहाँ अन्तोदात्त हुआ।

(21) घृतादीनां च [1.21]

पद.—घृतादीनाम् 6.3, च—अव्य.।

अनु.—अत्र फिषः अन्तः उदात्तः इति पदत्रयमनुवर्त्तते।

प्र.—घृतादिगणपठितानां प्रातिपदिकानाम् अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना

---

1. द्र.—केचित्तु कुपूर्वो य आप् तद्विषयाणामिति व्याख्याय (श.कौ. भाग 2, पृ. 23)।

लिया जाता है, यहाँ 'न' की निवृत्ति हो जाती है। घृतादि शब्द में 'आदि' शब्द प्रकार अर्थ में प्रयुक्त है। इससे सिद्ध होता है कि घृतादि एक आकृतिगण है।

कई बार एक ही कार्य अनेक शब्दों से होता है। वे शब्द संख्या में इतने अधिक होते हैं कि उन सभी का सूत्र में पाठ सम्भव नहीं होता है। लाघवप्रिय आचार्य ने इसके लिये गणपाठ किया है ताकि सुविदित रहे कि अमुक गण में कौन-कौन से शब्द हैं। उस गण का नाम उस गण के प्रथम शब्द के आधार पर रख दिया गया है। **यथा**—सर्वादिगण में **सर्व** आदि अनेक शब्दों का पाठ है। सर्वादिगण में सर्वप्रथम **सर्व** शब्द का पाठ होने से इसे सर्वादिगण कहते हैं।

इस प्रकार 'गणपाठ' सूत्रों को संक्षिप्ततम करने में अत्यन्त सहायक है। कुछ गण आकृतिगण होते हैं। यदि गण में पठित शब्दों से अतिरिक्त शब्दों को भी उस गण से सम्बन्धित कार्य देखा जाता है तो उस शब्द को उस गण में मान लिया जाता है और उस गण को आकृतिगण कहते हैं।

उदा.—(1) घृतं मिमिक्षे (ऋ. 2.3.11)—यहाँ अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(22) ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि [1.22]

पद.—ज्येष्ठकनिष्ठयोः 6.2, वयसि 7.1।

अनु.—पूर्ववत् फिष उदात्तोऽन्तश्चेति पदत्रयमत्राऽनुवर्त्तते।

प्र.—वयोऽर्थे वर्त्तमानयोर् ज्येष्ठकनिष्ठयोः प्रातिपदिकयोर् अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—'वयसि' यह सप्तम्यन्त पद है। इसका अर्थ है—'वयस्' अर्थ गम्यमान रहते।

सूत्रार्थ—वयस् अर्थ में वर्त्तमान ज्येष्ठ और कनिष्ठ प्रातिपदिकों को अन्तोदात्त होता है। दोनों शब्द इष्ठन् प्रत्यय से निष्पन्न हैं। इष्ठन् का नकार इत्सञ्ज्ञक होता है। अतः ज्येष्ठ और कनिष्ठ शब्दों को 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' से आद्युदात्त प्राप्त था। प्रकृत के द्वारा अन्तोदात्त का विधान है।

उदा.—(1) ज्येष्ठ आंह चमसा (ऋ. 4.33.5)—अन्तोदात्त हुआ।

(2) कनिष्ठ आंह चतुरः—पूर्ववत्।

विशेष—'वयसि' पद का प्रयोजन है कि **वयस्** अर्थ गम्यमान रहते ज्येष्ठ और कनिष्ठ शब्दों को अन्तोदात्त होता है। यथा—

(1) ज्येष्ठः—यहाँ 'ज्येष्ठ' शब्द वयस् अर्थ में नहीं है, अपितु श्रेष्ठ अर्थ में है। अतः अन्तोदात्त न हुआ। इष्ठन् प्रत्ययान्त होने से आद्युदात्त स्वर हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(2) कनिष्ठः—यहाँ वयस् अर्थ नहीं है। कनिष्ठ शब्द अल्पिष्ठ के अर्थ में वर्त्तमान है। अन्तोदात्त न हुआ। पूर्ववत् आद्युदात्त हुआ—कनिष्ठः। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(23) बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा [1.23]

पद.—बिल्वतिष्ययोः 6.2, स्वरितः 1.1, वा—अव्य.।

अनु.—फिषोऽन्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते।

प्र.—बिल्वतिष्ययोः प्रातिपदिकयोरन्तः स्वरितो वा भवति। पक्षेऽन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त 'फिषोः' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—बिल्व तथा तिष्य प्रतिपदिकों को विकल्प से अन्त स्वरित होता है। पक्ष में यथाप्राप्त अन्तोदात्त होता है।

उदा.—(1) बिल्वंः—अन्त स्वरित हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(2) बिल्वः—पक्ष में अन्तोदात्त हुआ।

(3) तिष्यंः—अन्त स्वरित हुआ।

(4) तिष्यः—पक्षे अन्तोदात्त हुआ।

○

अथ द्वितीयः पादः

(24) अथाऽऽदिः प्राक् शकटेः [2.1]

पद.—अथ—अव्य., आदिः 1.1, प्राक् अव्य., शकटेः 5.1।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः फिष उदात्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते।

प्र.—अधिकारोऽयम् 'शकटिशकट्योरक्ष.' (फि. 4.1) इत्यस्मात् प्राक्। फि. 4.1 इत्येतस्मात् प्राक् प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्त इति वेदितव्यः।

हिन्दी—'अथ' शब्द नवीन प्रकरण के प्रारम्भ किये जाने का द्योतक है। सूत्रस्थ 'शकटेः' पद के द्वारा 'शकटिशकट्यमक्षरमक्षरम् पर्यायेण' (फि. 4.1) का ग्रहण होता है। प्रकृत सूत्र अधिकार है। इसका अधिकार 'शकटिशकट्यमक्षरमक्षर.' यावत् चलता है।

सूत्रार्थ—'शकटिशकट्यमक्षर.' (फि. 4.1) से पूर्व तक जो भी कहा जायेगा, उसे आद्युदात्त होता है।

संक्षेप की प्रवृत्ति के कारण सूत्रों में यथासम्भव शब्दों की आवृत्ति को बचाया जाता है। पूर्वसूत्र से जो पद अगले सूत्र में अपेक्षित होता है, आचार्य ने उसका अगले सूत्र में साक्षात् पाठ न करके पूर्वसूत्र से उस पद का अनुवर्त्तन कर लिया है। इसे 'अनुवृत्ति' कहते हैं। सम्पूर्ण सूत्र का पाद पर्यन्त अथवा अध्याय पर्यन्त अनुवर्त्तन अधिकार कहलाता है। भाव यह है कि अनुवृत्ति का क्षेत्र स्वल्प होता है तथा अधिकार का क्षेत्र व्यापक हुआ करता है।

(25) ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य [2.2]

पद.—ह्रस्वान्तस्य 6.1, स्त्रीविषयस्य 6.1।

अनु.—'अथाऽऽदिः प्राक् शकटेः' इत्यधिक्रियते। 'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यतः फिषः उदात्त इति पदद्वयम्।

प्र.—नित्यं स्त्रीलिङ्गे वर्त्तमानस्य ह्रस्ववर्णान्तस्य प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—ह्रस्व वर्ण है अन्त में जिसके, उसे ह्रस्वान्त कहते हैं। ह्रस्व वर्ण 5

हैं—अ, इ, उ, ऋ तथा ऌ। 'स्त्रीविषयस्य' का अर्थ है—नित्य स्त्रीलिङ्ग, उसका।

सूत्रार्थ—जो नित्य स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान तथा ह्रस्व वर्ण है अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) बलिः—बलि शब्द के अन्त में ह्रस्व वर्ण इकार है। यह शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है। आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) तनूः—पूर्ववत्।

विशेष—(क) 'ह्रस्वान्तस्य' का प्रयोजन है कि जिस प्रातिपदिक के **अन्त में ह्रस्व वर्ण** हो, उसे आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) नदी—नदट् शब्द से 'टिड्ढाणञ्०' से ङीप् होकर नदी शब्द निष्पन्न होता है। यह नित्य स्त्रीलिङ्ग है, परन्तु इसके अन्त में ईकार है जो ह्रस्व वर्ण नहीं है, अतः आद्युदात्त न हुआ। अन्तोदात्त हुआ।

(ख) 'स्त्री' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन है कि **स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान** तथा ह्रस्वान्त प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है। यथा—

(2) मरुः—मरु शब्द ह्रस्वान्त तो है परन्तु स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ। अन्तोदात्त हुआ।

(ग) 'स्त्रीविषयस्य' पद में 'विषय' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन है कि जो ह्रस्वान्त प्रातिपदिक नित्य स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान है, उसे आद्युदात्त होता है। यथा—

(3) लघुः—लघु शब्द ह्रस्वान्त है, परन्तु यह नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ। अन्तोदात्त हुआ।

(4) बहुः—पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ।

(26) नब्विषयस्याऽनिसन्तस्य [2.3]

पद.—नब्विषयस्य 6.1, अनिसन्तस्य 6.1।

अनु.—पूर्ववत् अधिकारः।

प्र.—नित्यं नपुंसकलिङ्गे वर्त्तमानस्य प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो भवति, इसन्तस्य तु न भवति।

हिन्दी—'नप्' यह नपुँसकलिङ्ग की सञ्ज्ञा है। 'नब्विषयस्य' का अर्थ है—नपुँसकलिङ्ग में वर्त्तमान। इसन्त अर्थात् इस् है अन्त में जिसके, वह। 'अर्चिशुचिहुसृपिछादि.' (उणा. 2.110) से 'इसि' औणादिक प्रत्यय होता है। सकारस्य इकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। शेष 'इस्' बचता है। यहाँ इसी 'इस्' प्रत्यय का ग्रहण होता है।

सूत्रार्थ—'इस्' प्रत्यय नहीं है अन्त में जिसके तथा जो नपुँसकलिङ्ग में वर्त्तमान है, ऐसे प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) वनम्—वन शब्द इस् प्रत्यय से निष्पन्न नहीं है। यह नपुँसकलिङ्ग में वर्त्तमान है, अतः आद्युदात्त हुआ।

(शङ्का) पूर्वशास्त्र 'ह्रस्वान्तस्य नब्विषयस्य' से 'विषय' शब्द का अनुवर्त्तन सुलभ होने पर भी प्रकृत सूत्र में 'विषय' शब्द का ग्रहण क्यों है ?

(समा.) प्रकृत सूत्र में पुनः 'विषय' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन है कि लिङ्गव्यत्यय के द्वारा अथवा प्रत्ययलोप के द्वारा लिङ्गान्तर में सङ्क्रान्त होने पर भी आद्युदात्त हो जाय। यथा—

(1) मधोस्तृप्ता इवासते—मधु शब्द नपुँसकलिङ्ग होता है, परन्तु यहाँ लिङ्गव्यत्यय के द्वारा पुँलिङ्ग में वर्त्तमान है। तदपि आद्युदात्त हुआ।

(2) मधुमासः—मध्वस्मिन्नस्तीति—इस अर्थ में समास हुआ। 'मत्वर्थे मासतन्वोः' (पा. 4.4.128) से यत् प्रत्यय हुआ। मधु यत्—मधव्य। प्रत्यय का लुक् हुआ। मधु शब्द आद्युदात्त हुआ।

सूत्रस्थ 'अनिसन्तस्य' पद का प्रयोजन है कि 'इस्' प्रत्यय नहीं है अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक को ही आद्युदात्त होता है। यथा—

(3) सर्पिः—'अर्चिशुचिहुसृपिछादि.' (उणा. 2.110) से 'इसि' प्रत्यय होकर सर्पिस् शब्द निष्पन्न होता है। सर्पिस् शब्द नपुँसकलिङ्ग में वर्त्तमान है परन्तु इस् प्रत्ययान्त है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(27) तृणधान्यानां च द्व्यषाम् [2.4]

पद.—तृणधान्यानाम् 6.3, च—अव्य., द्व्यषाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—तृणवाचिनां धान्यवाचिनां च द्व्यच्कानां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'तृणधान्यानाम्' के द्वारा अर्थ का ग्रहण होता है, स्वरूप का नहीं। द्वि + अषाम् = द्व्यषाम्। 'अष्' अच् को कहते हैं। 'द्व्यषाम्' का अर्थ है—दो अच् वाला, उसका। अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—दो अच् वाले तृणवाची तथा धान्यवाची जो प्रातिपदिक, उनको आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) कुशः—कुश—यह तृणवाची है। यह शब्द दो अच् वाला है, अतः आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (पा. 8.4.56) से अनुदात्त को स्वरित हुआ।

(2) काशः—पूर्ववत्।

(3) माषः—माष धान्यवाची शब्द है। शेष पूर्ववत्।

(4) तिलः—धान्यवाची तिल शब्द आद्युदात्त हुआ।

विशेष—'द्व्यषाम्' का प्रयोजन है कि **दो अच् वाला** जो प्रातिपदिक, उसे आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) गोधूमाः—गोधूम धान्यवाची प्रातिपदिक है। प्रकृत से आद्युदात्त स्वर प्राप्त हुआ। यह शब्द दो अच् वाला नहीं है, प्रत्यय तीन अच् वाला है। अतः आद्युदात्त न हुआ। मध्योदात्त हुआ। गोधूमाः। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(28) त्रः सङ्ख्यायाः [2.5]

पद.—त्रः 6.1, सङ्ख्यायाः 6.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—नकारान्तस्य रेफान्तस्य सङ्ख्यावाचिनः प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'त्र्' यह द्वन्द्व समास है। तदन्तविधि होकर इसका अर्थ 'नकारान्त और रेफान्त' इस प्रकार गृहीत होता है। 'त्रः' का अन्वय 'सङ्ख्यायाः' पद के साथ है।

एक से लेकर नवदशन् शब्द पर्यन्त सभी शब्द सङ्ख्येयवाची होते हैं। अतः पदार्थों के साथ इनका सामानाधिकरण्य होता है।

यथा—एकः गजः, द्वौ गजौ, त्रयः गजाः। एका लता, द्वे लते, तिस्रः लताः। एकं पत्रम्, द्वे पत्रे, त्रीणि पत्राणि।

परन्तु विंशति आदि शब्द सङ्ख्या तथा सङ्ख्येय—दोनों अर्थों में होते हैं। यथा—विंशतिः गजाः—यहाँ सङ्ख्येयवाची है। गजानां विंशतिः—यहाँ सङ्ख्यावाची है।

सूत्रार्थ—नकारान्त और रेफान्त संख्यावाची प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है। नकारान्त संख्यावाची शब्द इस प्रकार हैं—पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन् इत्यादि। रेफान्त संख्यावाची शब्द केवल एक है—चतुर्।

उदा.—(1) पञ्च—पञ्चन् शब्द संख्यावाची है तथा नकारान्त है। अतः आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) सप्त—पूर्ववत्।

(3) चत्वारः पूर्ववत्।

(4) चतुष्कपालः—आद्युदात्त हुआ। चतुष्कपालः—शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित हुआ।

'इगन्तकालकपालभगाल.' (पा. 6.2.21) से पूर्वपद प्रकृतिस्वर होता है।

(29) स्वाङ्गशिटामदन्तानाम् [2.6]

पद.—स्वाङ्गशिटाम् 6.3, अदन्तानाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—शिड् इति प्राचां सर्वनामसञ्ज्ञा। स्वाङ्गवाचिनाम् अदन्तानां सर्वनामसञ्ज्ञकानां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'स्वाङ्ग' का लक्षण पीछे दिया जा चुका है। 'शिट्' सर्वनाम सञ्ज्ञा का नाम है। 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (पा. 1.1.27) के द्वारा आचार्य पाणिनि ने सर्वनाम सञ्ज्ञा का विधान किया है। 'अत्' यह तपरकरण है। 'तपरस्तत्कालस्य' (पा. 1.1.70) परिभाषा के द्वारा तपर वर्ण अपने काल का ही ग्रहण कराता है।

'अत्' का अर्थ है—ह्रस्व 'अ' वर्ण। 'अदन्त' का अर्थ है—ह्रस्व अकार है अन्त में जिसके।

सूत्रार्थ—स्वाङ्गवाची या सर्वनामसञ्ज्ञक जो ह्रस्व अकारान्त प्रातिपदिक हैं उन्हें आद्युदात्त होता है। सूत्र की शर्त के अनुसार जो शब्द स्वाङ्गवाची और अदन्त होगा उसे आद्युदात्त होता है। इसी प्रकार जो शब्द सर्वनामसञ्ज्ञक और अदन्त होगा, उसे आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) कर्णौ—कर्ण शब्द स्वाङ्गवाची है तथा अदन्त भी है। यह आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। अनुदात्त को स्वरित हुआ।

(2) ओष्ठौ—ओष्ठ शब्द स्वाङ्गवाची तथा अदन्त है। पूर्ववत् आद्युदात्त हुआ।

(3) विश्वः—विश्व शब्द अदन्त है। सर्वादिगण में पाठ होने से इसकी सर्वनाम सञ्ज्ञा हुई। पूर्ववत् आद्युदात्त हुआ।

विशेष—(क) 'स्वाङ्गशिटाम्' का प्रयोजन है कि जो अदन्त शब्द या तो **स्वाङ्गवाची** हो अथवा **सर्वनामसञ्ज्ञक** हो, उसे आद्युदात्त होता है। यथा—(1) घटः।

घट शब्द अदन्त तो है परन्तु न तो स्वाङ्गवाची है और न ही सर्वनामसञ्ज्ञक है। अतः आद्युदात्त न हुआ, अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(ख) 'अदन्तानाम्' का प्रयोजन है कि स्वाङ्गवाची या सर्वनामसञ्ज्ञक जो **अदन्त** शब्द, उसे ही आद्युदात्त होता है। यथा—

(2) बाहू—बाहु शब्द स्वाङ्गवाची है परन्तु अदन्त नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ अन्तोदात्त हुआ।

(30) प्राणिनां कुपूर्वम् [2.7]

पद.—प्राणिनाम् 6.3, कुपूर्वम् 1.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—प्राणिवाचिनां प्रातिपदिकानां कवर्गीयवर्णात् पूर्वं यद् अक्षरं तद् उदात्तं भवति।

हिन्दी—कु = कवर्ग। कुपूर्वम्—कवर्गीय वर्ण से पूर्व में है जो (अक्षर)। 'प्राणिनाम्'—यहाँ प्राणि शब्द का अर्थ है—प्राणिवाचक शब्द।

सूत्रार्थ—प्राणिवाची प्रातिपदिक का कवर्गीय वर्ण से पूर्व स्थित अच् उदात्त होता है।

उदा.—(1) खगः—खग शब्द प्राणिवाची है। इसमें कवर्गीय वर्ण गकार है। इससे पूर्व स्थित अकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(2) काकः—पूर्ववत्।

(3) वृकः—पूर्ववत्।

(4) विहगः—कवर्गीय गकार से पूर्व स्थित अकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये।

(5) शुकः—पूर्ववत्।

(6) चटकः—'विहगः' की तरह।

विशेष—(क) 'प्राणिनाम्' का प्रयोजन है कि **प्राणिवाची** प्रातिपदिक का कुपूर्व अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(1) उदकम्—उदक शब्द में ककार कवर्गीय अक्षर है। इससे पूर्वस्थित दकार को उदात्त प्राप्त हुआ, परन्तु यह प्राणिवाची नहीं है। अतः प्रकृत से उदात्त न होकर 'कर्दमादीनां च' (फि. 3.9) से द्वितीय अच् उदात्त हुआ—उदकम्। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(ख) 'कुपूर्वम्' का प्रयोजन है कि प्राणिवाची जो शब्द उसका **कवर्गीय वर्ण से पूर्व** स्थित अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(2) मयूरः—'मयूर' प्राणिवाची है परन्तु इसमें कवर्गीय वर्ण नहीं है।

(31) खय्युवर्णं कृत्रिमाख्या चेत् [2.8]

पद.—खयि 7.1, उवर्णम् 1.1, कृत्रिमाख्या 1.1, चेत्—अव्य.।

अनु.—पूर्ववत् अधिकारः।

प्र.—कृत्रिमार्थे गम्यमाने प्रातिपदिकस्य खयि परत उकार उदात्तो भवति।

हिन्दी—'खयि' सप्तम्यन्त पद है। 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' (पा. 1.1.66) परिभाषा के द्वारा 'खय्' के परे रहते अव्यवहित पूर्व को कार्य होता है। 'खय्' एक प्रत्याहार है। इसमें वर्गीय द्वितीय तथा प्रथम अक्षर आते हैं। खय् प्रत्याहार में दश वर्ण होते हैं—ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क् और प्।

सूत्रार्थ—कृत्रिम अर्थ गम्यमान रहते प्रातिपदिक का उवर्ण उदात्त होता है, यदि वह उवर्ण खय् वर्ण से अव्यवहित पूर्व में स्थित हो।

उदा.—(1) कन्दुकः—कन्दुक एक प्रातिपदिक है। दकारस्थ उकार से परे ककार है, जो एक खय् वर्ण है। उकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से परे अनुदात्त स्वरित हुआ।

(32) उनर्वन्नन्तानाम् [2.9]

पद.—उनर्वन्नन्तानाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—'उन'प्रत्ययान्तऋकारान्तस्य 'वन्'प्रत्ययान्तस्य प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—उन + ऋ + वन् गुण एकादेश हुआ। उनर्वन्। उनर्वन् में द्वन्द्व समास है। इसके प्रत्येक पद के साथ 'अन्त' शब्द का सम्बन्ध है। उन एक प्रत्यय है। 'ऋ' एक वर्ण है। 'वन्' भी एक प्रत्यय है। 'उन' के द्वारा 'कृवृदारिभ्य उनन्' (उणा. 3.53) से विहित 'उनन्' का ग्रहण होता है। 'वन्' यह अनुबन्ध रहित निर्देश है। इसके द्वारा 'वनिप्' आदि का ग्रहण होता है। अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—उनप्रत्ययान्त, ऋकारान्त तथा वन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) वरुणं वो रिशादसम् (ऋ. 5.64.1)—वरुण शब्द उनन् प्रत्यय से निष्पन्न शब्द है। आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) स्वसारं त्वा कृणवै—पूर्ववत् आद्युदात्त।

(3) पीवानं मेषम् अपचन्त वीरा (ऋ. 10.27.17)—वन् प्रत्ययान्त पीवन् शब्द है। पूर्ववत् आद्युदात्त हुआ।

(33) वर्णानां तणतिनितन्तानाम् [2.10]

पद.—वर्णानाम् 6.3, तणतिनितन्तानाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—वर्णवाचिनां तणतिनितन्तानां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'तणतिनित्' में द्वन्द्व समास है। इसके प्रत्येक पद के साथ 'अन्त' शब्द सम्बद्ध है। 'वर्णानाम्' का अर्थ है—वर्णवाची जो शब्द, उनका। अनुवृत्त 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' पद बना लिया जाता है। 'त' आदि सभी शब्द हैं या वर्ण हैं।

सूत्रार्थ—त, ण, ति, नि तथा त्—ये हैं अन्त में जिसके उन वर्णवाची प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) एतं:—'एत' शब्द के अन्त में 'त' है तथा यह वर्णवाची शब्द है। आद्युदात्त हुआ।

(2) हरिंणः—पूर्ववत् आद्युदात्त हुआ।

(3) शितिः—पूर्ववत् आद्युदात्त हुआ।

(4) पृश्निंः—पूर्ववत्।

(5) हरित्—पूर्ववत्।

विशेष—(शङ्का) 'श्वेतः' शब्द अन्तोदात्त प्राप्त होता है। प्रकृत से इसे आद्युदात्त होना चाहिए।

(समा.) इस विषय में दो समाधान हैं। प्रथम—धृतादिगण पठित शब्द अन्तोदात्त होते हैं। धृतादिगण एक आकृतिगण है। 'श्वेत' शब्द को धृतादिगण में मान लिया जाये। द्वितीय—वेद में सभी विधियों का विकल्प दृष्टिगोचर होता है। द्र.—'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' (परि.)। आचार्य पाणिनि ने अपने शास्त्र में तेरह बार 'बहुलं छन्दसि' तथा एक बार 'व्यत्ययो बहुलम्' का पाठ करके इसका समर्थन किया है। यहाँ भी अन्तोदात्त स्वर को वैदिक व्यत्यय मानकर समाधान किया जा सकता है।

(34) ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वमनृत् ताच्छील्ये [2.11]

पद.—ह्रस्वान्तस्य 6.1, ह्रस्वम् 1.1, अनृत् 1.1, ताच्छील्ये 7.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—ताच्छील्यार्थे गम्यमाने ह्रस्वान्तस्य प्रातिपदिकस्य यद् आद्यम् ऋकारभिन्नं ह्रस्वसञ्ज्ञकम् अक्षरं तद् उदात्तं भवति।

हिन्दी—अनृत्—न ऋत्—यहाँ नञ् समास है। ऋत् में तत्काल के ग्रहण के लिये तपर किया गया है। ऋत् का अर्थ हुआ—ह्रस्व ऋकार। 'अनृत्' का अर्थ हुआ—जिसमें ह्रस्व ऋकार नहीं है।

'ह्रस्वम्' का अर्थ है—ह्रस्व वर्ण। ये पाँच हैं—अ, इ, उ, ऋ तथा ऌ। 'ह्रस्वान्तस्य' का अर्थ है—ह्रस्व वर्ण है अन्त में जिसके, उसका। 'ताच्छील्य' का अर्थ है—तत्स्वभावता।

सूत्रार्थ—ताच्छील्य अर्थ में वर्त्तमान ह्रस्वान्त जो प्रातिपदिक, उसका आदि जो ह्रस्व ऋकारभिन्न अक्षर, वह उदात्त होता है।

उदा.—(1) मुनिः—मुनि शब्द 'मौन' इस ताच्छील्य अर्थ में वर्त्तमान है। इसके अन्त में इकार है, जो ह्रस्व वर्ण है। मुनि शब्द का आदि अच् उकार है, जो ह्रस्व वर्ण है। इसे उदात्त स्वर हुआ—मुनिः। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) कपिः—यहाँ 'चल' ताच्छील्य अर्थ में ह्रस्वान्त 'कपि' शब्द वर्त्तमान है। इसका आदि अच् अकार, जो ह्रस्व है, उदात्त है। शेष पूर्ववत्।

विशेष—(क) सूत्रस्थ 'ताच्छील्ये' का प्रयोजन है कि **ताच्छील्य अर्थ में** वर्त्तमान ह्रस्वान्त शब्द का आदि ह्रस्व वर्ण उदात्त होता है। यथा—

(1) जडः—डकारस्थ अकार ह्रस्व वर्ण है। अतः 'जड' ह्रस्वान्त है। आदि अच् जकारस्थ अकार ह्रस्व वर्ण है। इसे उदात्त स्वर प्राप्त हुआ। परन्तु यह शब्द ताच्छील्य अर्थ में विद्यमान नहीं है, अतः आद्युदात्त न हुआ। अन्तोदात्त हुआ।

(2) बधिरः—आद्युदात्त न हुआ।

(ख) सूत्रस्थ 'ह्रस्वान्तस्य' का प्रयोजन है कि **ह्रस्वान्त** जो प्रातिपदिक, उसका ह्रस्व तथा आदि अच् उदात्त होता है। यथा—

(3) वधूः—वधू शब्द ताच्छील्य अर्थ में वर्त्तमान है। आदि अच् को उदात्त स्वर प्राप्त हुआ। परन्तु वधू शब्द ह्रस्वान्त नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(ग) सूत्रस्थ 'ह्रस्वम्' पद का प्रयोजन है कि ह्रस्वान्त प्रातिपदिक का जो **आदि ह्रस्व** अच्, उसे उदात्त स्वर होता है। यथा—

(4) प्राज्ञम्—'प्राज्ञ' ताच्छील्य अर्थ में वर्त्तमान है और ह्रस्वान्त भी है। आद्युदात्त प्राप्त हुआ, परन्तु आदि अच् (आकार) ह्रस्व वर्ण नहीं है। 'दीर्घञ्' से गुरुसञ्ज्ञक है। आद्युदात्त न हुआ।

(घ) सूत्रस्थ 'अनृत्' पद का प्रयोजन है कि ह्रस्वान्त प्रातिपदिक का जो **ऋकार भिन्न**, ह्रस्व आदि अच् ही उदात्त होता है। यथा—

(4) नृशंसः—ताच्छील्य अर्थ में वर्त्तमान नृशंस शब्द ह्रस्वान्त है। इसका आदि अच् ऋकार है जो ह्रस्व है। आदि अच् ऋकार होने से आद्युदात्त न हुआ।

(5) तृणकम्—पूर्ववत्।

(35) अक्षस्याऽदेवनस्य [2.12]

पद.—अक्षस्य 6.1, अदेवनस्य 6.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—देवनभिन्नस्याऽक्षप्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—अक्ष शब्द के निम्नलिखित अर्थ हैं—

'द्यूतेऽक्षे शारिफलकेऽप्याकर्षोऽथाक्षामिन्द्रिये।
ना द्यूताङ्गे कर्षचक्रे व्यवहारे कलिद्रुमे' ॥

(अ.को. 3.222)

अर्थात् 'अक्षम्' शब्द के तीन नाम हैं—इन्द्रिय, तूतिया और सोचरखार। 'अक्षः' शब्द के पाँच नाम हैं—जुआ खेलने का पासा (अर्थात् देवन); कर्ष (सोलह मासा—प्रमाणविशेष), पहिया, बहेड़ा और व्यवहार (अर्थात् लेन-देन)।

प्रकृत सूत्र के द्वारा 'अक्ष' के 'पासा' अर्थ का प्रतिषेध किया गया है। सूत्रार्थ इस प्रकार है—'पासा' अर्थ से अतिरिक्त अर्थों में वर्त्तमान अक्ष प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) (तस्य) नाक्षः—आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

विशेष—'अदेवनस्य' का प्रयोजन है कि **'पासा' अर्थ से अतिरिक्त अर्थ** में वर्त्तमान 'अक्ष' शब्द को आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) अक्षैर्मा दीव्यः (ऋ. 10.34.13)—यहाँ देवन अर्थ में वर्त्तमान 'अक्ष' शब्द है। आद्युदात्त न हुआ, अन्तोदात्त हुआ।

(36) अर्धस्याऽसमद्योतने [2.13]

पद.—अर्धस्य 6.1, असमद्योतने 7.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—अविभागेऽर्थे गम्यमानेऽर्धस्य प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'समद्योतन' का अर्थ है—विभाग। असमद्योतन का अर्थ है—विभाग अर्थ को छोड़कर।

सूत्रार्थ—अर्ध-प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है, यदि वह समद्योतन अर्थ में वर्त्तमान न हो।

उदा.—(1) अर्धो ग्रामस्य—विभाग अर्थ नहीं है। आद्युदात्त हुआ।

विशेष—'असमद्योतने' का प्रयोजन है कि **विभाग अर्थ में वर्त्तमान न हो** तो अर्ध शब्द आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) अर्धं पिप्पल्याः—समद्योतन अर्थ में वर्त्तमान है। आद्युदात्त न हुआ। अन्तोदात्त हुआ।

पुँल्लिङ्ग में अर्ध शब्द 'खण्ड' का वाचक है, परन्तु नपुँसकलिङ्ग में अर्ध शब्द का अर्थ है—बराबर का हिस्सा। द्र.—'भित्तं शकलखण्डे वा पुंस्यर्धोऽर्धं समेऽशके। (अ.को. 1.3.16)

(37) पीतद्रुवर्थानाम् [2.14]

पद.—पीतद्रुवर्थानाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—पीतद्रुवाचिनां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—पीतद्रु वृक्षविशेष का नाम है। अमरकोष (2.4.60) में इसके तीन पर्याय बताये हैं। द्र.—'पीतद्रुः सरलः पूतिकाष्ठं चाऽथ द्रुमोत्पलः'।

सूत्रार्थ—पीतद्रुवाची शब्द आद्युदात्त होते हैं।

उदा.—(1) पीतद्रुः—आद्युदात्त हुआ, शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) सर॑लः—पूर्ववत्।

(3) पूति॑काष्ठम्—पूर्ववत्।

(38) ग्रामादीनां च [2.15]

पद.—ग्रामादीनाम् 6.3, च—अव्य.।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—ग्रामादिगणपठितानां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'ग्रामादि' शब्द में आदि शब्द प्रकारवाची है। अतः ग्रामादिगण एक आकृतिगण हैं। अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त (फिषाम्) बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—ग्रामादिगणपठित प्रातिपदिक आद्युदात्त होते हैं।

उदा.—(1) ग्रा॑मः—आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) सो॑मः—पूर्ववत्।

(3) या॑मः—पूर्ववत्।

'अविहितलक्षणमाद्युदात्तं ग्रामादिषु द्रष्टव्यम्'। अर्थात् जिस शब्द को आद्युदात्त स्वर का लक्षण प्रत्यक्षतः प्राप्त न हो, उसे ग्रामादि गण में जानना चाहिये।

(39) लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य [2.16]

पद.—लुबन्तस्य 6.1, उपमेयनामधेयस्य 6.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—उपमेयवाचकस्य लुब्अन्तस्य प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'लुबन्त' के स्थान पर 'स्फिगन्त' ऐसा पाठान्तर प्राप्त होता है[1]। स्फिग् 'लुप्' को ही कहते हैं। 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' (पा. 1.1.61) से प्रत्यय की लुप् सञ्ज्ञा कही है।

1. 'स्फिगन्तस्ये'ति पाठान्तरम्। (श.कौ. भाग 2, पृ. 24)

सूत्रार्थ—लुप् है अन्त में जिसके, ऐसे उपमेयवाची प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) चञ्चा—सञ्ज्ञा अर्थ गम्यमान रहते चञ्चा शब्द से 'कन्' प्रत्यय हुआ। मनुष्य अर्थ वाच्य रहते 'लुम्मनुष्ये' (पा. 5.3.98) से प्रत्यय का लुप् हुआ। चञ्चा शब्द लुबन्त है तथा उपमेयवाची भी है (यथा—चञ्चेव मनुष्यः चञ्चा)। अतः आद्युदात्त हुआ।

(2) शिवः—शिव शब्द से 'कन्' हुआ। 'जीविकार्थे चाऽऽपण्ये' (पा. 5.3.99) से प्रत्यय का लुप् हुआ। पूर्ववत् आद्युदात्त।

विशेष—(क) 'लुबन्तस्य' का प्रयोजन है कि **लुप् है अन्त में जिसके**, ऐसे उपमेयवाची प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) अग्निर्माणवकः—उपमेयवाची तो है परन्तु अन्त में लुप् नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(ख) 'उपमेयनामधेयस्य' का प्रयोजन है कि लुप् है अन्त में जिसके ऐसे **उपमेयवाची** प्रातिपदिक को ही आद्युदात्त होता है। यथा—

(2) वरणाः—'अदूरभवश्च' (पा. 4.2.70) से अण् प्रत्यय हुआ। 'वरणादिभ्यश्च' (पा. 4.2.82) से प्रत्यय का लुप् हुआ। यहाँ अन्त में लुप् है, परन्तु उपमेयवाची नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(ग) 'नामधेयस्य' का प्रयोजन है कि 'शुनक इवाऽयं वृकः' में आद्युदात्त न हुआ। देवपथादिगण के आकृतिगण होने से 'कन्' प्रत्यय का लुप् होने पर 'शुनक' शब्द उपमेय अर्थ में वर्त्तमान है। यह उसकी सञ्ज्ञा नहीं है।

(40) न वृक्षपर्वतविशेषव्याघ्रसिंहमहिषाणाम् [2.17]

पद.—न—अव्य., वृक्षपर्वतविशेषव्याघ्रसिंहमहिषाणाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः। 'लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य' इत्येतद् अविकलम् अनुवर्त्तते।

प्र.—उपमेयवाचिनां लुबन्तानां वृक्षविशेषाणां पर्वतविशेषाणां व्याघ्रसिंह-महिषाणां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो न भवति।

हिन्दी—सूत्रस्थ 'विशेष' शब्द का 'वृक्ष' तथा 'पर्वत' इन दो शब्दों के साथ

सम्बन्ध है। अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—लुप् है अन्त में जिसके, ऐसे उपमेयवाची वृक्षविशेष, पर्वतविशेष, व्याघ्र, सिंह तथा महिष—इन प्रातिपदिकों को आद्युदात्त नहीं होता है।

आद्युदात्त का निषेध हो जाने पर यथाप्राप्त स्वर होता है।

उदा.—(1) ताल:—'ताल इव तालः' इस अर्थ में वृक्षविशेष 'ताल' शब्द को आद्युदात्त न हुआ। अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(2) मेरुः—मेरुरिव मेरुः—पूर्ववत् आद्युदात्त का निषेध हुआ।

(3) व्याघ्रः—आद्युदात्त न हुआ।

(4) सिंहः—पूर्ववत्।

(5) महिषः—पूर्ववत् अन्तोदात्त हुआ।

पूर्वोक्त सभी लक्ष्यों में सर्वत्र 'देवपथादिभ्यश्च' (पा. 5.3.100) से कन् प्रत्यय का लुप् हुआ है। अतः सभी लुबन्त तथा उपमेयवाची हैं।

विशेष—(क) सूत्र में 'विशेष' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन है कि निम्नलिखित में आद्युदात्त का निषेध नहीं होता है। यथा—

(1) वृक्षः—यहाँ सामान्य अर्थ में वृक्ष शब्द प्रयुक्त है तथा वृक्षविशेष का प्रयोग नहीं है। अतः आद्युदात्त का निषेध न हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(2) पर्वतः—पूर्ववत् आद्युदात्त का निषेध न हुआ। शेखरव्याख्याकार लिखते हैं कि यद्यपि फिट्सूत्रवृत्ति में प्रकृत सूत्र का स्वरूप 'न व्याघ्रमहिषसिंह-वृक्षपर्वतानाम्' इस प्रकार प्राप्त होता है, तथापि 'वृक्ष' तथा 'पर्वत' शब्दों के साथ 'विशेष' शब्द का ग्रहण इष्ट है। अतः तद्घटित (यथा—न वृक्षपर्वतविशेष.) सूत्र-न्यास ही युक्त है[1]।

(41) राजविशेषस्य यमन्वा चेत् [2.18]

पद.—राजविशेषस्य 6.1, यमन्वा 1.1, चेत्—अव्य.।

---

1. वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 499 (शे.)—यद्यपि फिट्सूत्रवृत्तौ 'न व्याघ्रमहिषसिंह-वृक्षपर्वतानामि'ति पठ्यते, तथापि वृक्षपर्वतांशे विशेषणमेव ग्रहणमिष्टमिति तद्घटितेव सूत्रं पठितम्। सर्वत्र विशेषपदाऽन्वयाऽभावबोधनाय व्युत्क्रमः कृतः।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः। 'लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य' (फि. 2.16) इत्येतद् अविकलम् अनुवर्त्तते।

प्र.—उपमेयवाचिनो लुबन्तस्य राजविशेषस्य प्रातिपदिकस्य वृद्धसञ्ज्ञक आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—वृद्ध सञ्ज्ञा का प्राचीन नाम 'यमन्वा' है। आचार्य पाणिनि के अनुसार वृद्धसञ्ज्ञा का लक्षण इस प्रकार है—

'वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्' (पा. 1.1.73) अर्थात् जिस शब्द के अच् वर्णों में आदि अच् वृद्धिसञ्ज्ञक वर्ण हो, वह 'वृद्ध' कहलाता है। 'वृद्धिरादैच्' के द्वारा आ, ऐ तथा औ की वृद्धि सञ्ज्ञा है।

सूत्रार्थ—लुप् है अन्त में जिसके, ऐसे उपमेयवाची राजविशेष प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है, यदि वह प्रातिपदिक वृद्धसञ्ज्ञक हो।

उदा.—(1) आङ्गः—'आङ्ग इवाऽयम्' इस अर्थ में 'द्व्यञ्मगधकलिङ्ग-सूरमसादण्' (पा. 4.1.170) से अण् होकर 'आङ्ग' शब्द बनता है। सञ्ज्ञा अर्थ में कन् हुआ। 'देवपथादिभ्यश्च' (पा. 5.3.100) से कन् प्रत्यय का लुप् हुआ। आङ्ग शब्द में दो अच् हैं। इनमें आकार आदि अच् है। 'वृद्धिरादैच्' से वृद्धि सञ्ज्ञा होकर 'वृद्धिर्यस्याऽचामादि.' से आङ्ग शब्द की वृद्ध सञ्ज्ञा हुई। 'आङ्ग इवाऽयं प्रतिकृतिः' इस अर्थ में प्रत्यय होने से उपमेयवाची हुआ। सभी शर्तें पूरी होने पर आद्युदात्त हुआ।

विशेष—यद्यपि पूर्वसूत्र के द्वारा इष्टसिद्धि हो जाती है। 'सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः' परिभाषा है। तदनु प्रकृत सूत्र नियमार्थ है। यह नियम करता है कि यदि लुबन्त उपमेयवाची राजविशेष प्रातिपदिक को आद्युदात्त करना हो तो वह वृद्ध-सञ्ज्ञक को ही होता है, अन्य को नहीं[1]।

फिट्सूत्रवृत्ति में विपरीत नियम की कल्पना की गई है। यथा—'यदि वृद्ध-सञ्ज्ञक को आद्युदात्त करना हो तो राजविशेष को ही होता है'। शेखरकार ने इसे चिन्त्य माना है[2]।

---

1. द्र.—राजविशेषस्य चेद् वृद्धस्यैवेत्याहुः। (वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 500, सुबो.)।
द्र.—एवञ्च तेनैव सिद्धे 'वृद्धस्यैवे'ति नियमार्थम्। (वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 500, शे.)।

2. द्र.—वृत्तौ तु 'वृद्धस्य चेद्राजविशेषस्यैवे'ति नियम उत्क्रान्तश्चिन्त्यम्, पूर्वसूत्रे व्याघ्र-ग्रहणवैयर्थ्यापत्तेः। (वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 500, शे.)।

(42) लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः [2.19]

पद.—लघौ 7.1, अन्ते 7.1, द्वयोः 6.2, च—अव्य., बह्वषः 6.1, गुरुः 1.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—शब्दस्य अन्ते एकाक्षरे लघौ द्वयोर् वाऽक्षरयोर् लघ्वोः, बह्वचः प्रातिपदिकस्य यद् गुरुसञ्ज्ञकम् अक्षरं तद् उदात्तं भवति।

हिन्दी—'लघु' एक सञ्ज्ञा है। 'ह्रस्वं लघु' से ह्रस्व वर्णों (अ,इ,उ,ऋ और ऌ) की ह्रस्व सञ्ज्ञा कही है। 'द्वयोः' का अर्थ है—दो का। यहाँ 'अक्षरयोः' पद अर्थतः उपलब्ध होता है। 'च' पद 'वा' अर्थ में प्रयुक्त है।

'अष्' एक प्राचीन सञ्ज्ञा है। यह अच् का पर्याय है। 'बह्वष्' का अर्थ है—अनेक अचों वाला। 'संयोगे गुरु' तथा 'दीर्घञ्च'—इन दो सूत्रों के द्वारा गुरु सञ्ज्ञा कही गई है।

सूत्रार्थ—अन्त में एकाक्षर के लघु रहते अथवा दो अक्षरों के लघु रहते अनेक अच् वर्णों वाले प्रातिपदिक का गुरुसञ्ज्ञक वर्ण उदात्त होता है। यहाँ 'आदिः' पद का अनुवर्त्तन नहीं है। अतः अनादि जो गुरु अक्षर, उसे भी उदात्त होता है।

(शङ्का) यहाँ 'आदिः' पद का सम्बन्ध है। तदनु सूत्रार्थ इस प्रकार है—अन्त में एकाक्षर अथवा दो अक्षरों के लघुसञ्ज्ञक रहते अनेक अच् वर्णों वाले प्रातिपदिक के गुरुसञ्ज्ञक अक्षरों में जो आदि अक्षर, वह उदात्त होता है।

(समा.) 'अन्यतो ङीष्' इस सूत्र की व्याख्या में आचार्य हरदत्त ने 'सारङ्ग' तथा 'कल्माष' शब्दों को 'लघावन्ते द्वयोश्च.' सूत्र के द्वारा मध्योदात्त कहा है। यदि प्रकृत सूत्र में 'आदिः' पद का सम्बन्ध होता तो सारङ्ग और कल्माष—ये शब्द आद्युदात्त होने चाहिए। कारण कि सारङ्ग में सकारस्थ आकार ही गुरुसञ्ज्ञकों में आदि है तथा कल्माष में ककारस्थ अकार ही गुरुसञ्ज्ञकों में आदि है। अतः प्रकृत सूत्र में 'आदिः' पद का सम्बन्ध नहीं है[1]।

1. द्र. न च गुरूणां मध्ये च आदिरित्यर्थोऽस्त्विति वाच्यम्। 'अन्यतो ङीष्' इति सूत्रे सारङ्गकल्माषशब्दौ 'लघावन्ते' इत्यादिना मध्योदात्ताविति हरदत्तग्रन्थविरोधादित्याहुः। (वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 501, सुबो.)

तु.—'सारङ्गकल्माषौ 'लघावन्ते' इत्यनेन मध्योदात्तौ'। (का. पदम.)

उदा.—(1) कल्याणम्—कल्याण प्रातिपदिक अनेकाच् है। इसका अन्तिम अच् (णकारस्थ अकार) की 'ह्रस्वं लघु' से लघु सञ्ज्ञा है। यहाँ एक अक्षर लघु है। ककारस्थ अकार की 'संयोगे गुरु' से गुरु सञ्ज्ञा हुई। तब अकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। कल्याणम्। उदात्त से उत्तर अनुदात स्वरित हुआ।

(2) कल्याणम्—आकार की 'दीर्घञ्च' से गुरु सञ्ज्ञा हुई। पूर्ववत् आकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। यह उदात्त पर्यायेण होता है।

(3) कोलाहलः—कोलाहल प्रातिपदिक अनेकाच् है। इसके अन्त में दो लघु अच् (हकारस्थ अकार तथा लकारस्थ अकार) हैं। इसमें दो गुरु अक्षर (ओकार व आकार) हैं। इन्हें पर्यायेण उदात्त होता है। प्रथम ओकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(4) कोलाहलः—पक्ष में आकार उदात्त हुआ। शेष कार्य पूर्ववत्।

विशेष—(क) 'लघावन्ते' का प्रयोजन है कि प्रातिपदिक के **अन्त में एक लघुवर्ण** के रहते अनेकाच् शब्द का गुरुसञ्ज्ञक वर्ण उदात्त होता है। यथा—

(1) वातप्रमी—वातप्रमी शब्द अनेकाच् है, परन्तु इसके अन्त में ह्रस्व वर्ण नहीं है। अतः इसका गुरुवर्ण उदात्त न हुआ, अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये।

(ख) 'बह्वषः' का प्रयोजन है कि **अनेकाच् जो शब्द**, उसका गुरु वर्ण उदात्त होता है; यदि उसके अन्त में एक अथवा दो लघुसञ्ज्ञक वर्ण हों। यथा—

(2) देवः—देव शब्द के अन्त में लघुसञ्ज्ञक वर्ण (अकार) है, परन्तु यह अनेकाच् नहीं है। अतः इसका गुरुसञ्ज्ञक वर्ण (एकार) उदात्त न हुआ। अन्तोदात्त हुआ।

(ग) 'गुरुः' का प्रयोजन है कि अनेकाच् प्रातिपदिक का **गुरुसञ्ज्ञक वर्ण** ही उदात्त होता है। यथा—

(3) किसलयम्—किसलय प्रातिपदिक अनेकाच् है। इसके अन्त में दो लघुसञ्ज्ञक वर्ण हैं। इसके गुरुसञ्ज्ञक वर्ण को उदात्त प्राप्त हुआ, परन्तु किसलय शब्द में एक भी गुरु वर्ण नहीं है, अतः उदात्त न हो पाया। यथाप्राप्त अन्तोदात्त हुआ।

(43) स्त्रीविषयवर्णाक्षुपूर्वाणाम् [2.20]

पद.—स्त्रीविषयवर्णाऽक्षुपूर्वाणाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—स्त्रीलिङ्गे वर्त्तमानस्य वर्णवाचिनोऽक्षुपूर्वस्य प्रातिपदिकस्य आदिः उदात्तो भवति।

हिन्दी—अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है। 'विषय' शब्द का सम्बन्ध स्त्री शब्द के साथ है। 'वर्ण' का स्वरूपग्रहण नहीं है, अपितु अर्थग्रहण है। अतः वर्ण शब्द के द्वारा वर्णवाची शब्द का ग्रहण होता है।

अक्षुशब्दात् 'यूवोऽस्ति यस्य सः अक्षुपूर्वः' इस अर्थ में बहव्रीहि समास हुआ है।

सूत्रार्थ—स्त्रीविषयक, वर्णवाची तथा अक्षुपूर्व—इन प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) मल्लिंका—यह प्रतिपदिक स्त्री विषय है, अतः आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) श्येनी—यह वर्णवाची प्रातिपदिक है, अतः आद्युदात्त हुआ। शेष कार्य पूर्ववत्।

(3) हरिणी—वर्णवाची प्रातिपदिक है। सभी कार्य पूर्ववत्।

(4) तरक्षुः—तरक्षु प्रातिपदिक के अन्त में अक्षु शब्द है। अतः आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ। 'तरक्षु' एक मृग विशेष का नाम है। इसके शरीर पर काले रंग की रेखाएँ होती हैं।

(44) शकुनीनां च लघुपूर्वम् [2.21]

पद.—शकुनीनाम् 6.3, च—अव्य., लघु 1.1, पूर्वम् 1.1।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—शकुनिवाचिनां प्रातिपदिकानामन्त्यात् पूर्वं यल्लघुसञ्ज्ञकमक्षरं तद् उदात्तं भवति।

हिन्दी—शकुनि शब्द का यहाँ अर्थ का ग्रहण होता है। 'ह्रस्वं लघु' से ह्रस्व सञ्ज्ञा कही गई है। पूर्व शब्द सापेक्ष होता है। अतः यहाँ 'अन्त्यात्' पद अर्थतः उपलब्ध होता है।

सूत्रार्थ—शकुनिवाची प्रातिपदिक का जो अन्त्य वर्ण, उससे पूर्व जो लघुसञ्ज्ञक अक्षर, वह उदात्त होता है।

'ह्रस्वं लघु' के द्वारा अ, इ, उ, ऋ तथा ऌ—इन पाँच वर्णों की लघु सञ्ज्ञा होती है।

सूत्र की शर्त के अनुसार—

(i) प्रातिपदिक शकुनिवाची हो।
(ii) प्रातिपदिक के अन्त्य वर्ण से पूर्व जो अक्षर, वह लघुसञ्ज्ञक हो।
(iii) वह लघु अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) कुक्कुटः—यह शकुनिवाची प्रातिपदिक है। इसके अन्त्य अच् से पूर्व लघुसञ्ज्ञक उकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) तित्तिरः—पूर्ववत् अन्त्य अच् से पूर्व लघुसञ्ज्ञक (इकार) वर्ण उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुये।

(3) खञ्जरीटः—अन्त्य से पूर्व ईकार है जो लघुसञ्ज्ञक नहीं है। इससे पूर्व जकारस्थ अकार है, जो लघुसञ्ज्ञक है। अतः उदात्त हुआ।

विशेष—प्रश्न—'लघुपूर्वम्' समस्त पद है या असमस्त पद ? (समा.) 'लघु' और 'पूर्वम्' ये दो असमस्त पद हैं[1]। यदि 'लघूपर्वम्' समस्त पद होता तो इसमें या तो तत्पुरुष समास (यथा—लघोः पूर्वम्) होता अथवा बहुव्रीहि समास (यथा—लघु-पूर्वम्) होता। 'लघौ' सप्तमी निर्देश के द्वारा ही सिद्ध हो जाने से 'पूर्वम्' पद का न्यास व्यर्थ हो जाता है। अतः यहाँ तत्पुरुष समास नहीं है। 'लघुपूर्वम्' के स्थान पर 'लघोः' इस प्रकार षञ्ठमी निर्देश के द्वारा ही सिद्ध हो जाने पर पूर्व ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि यहाँ बहुव्रीहि समास भी नहीं है[2]। इससे सिद्ध होता है कि ये दोनों असमस्त पद हैं।

(45) नर्तुप्राण्याख्यायाम् [2.22]

पद.—न—अव्य., ऋतुप्राण्याख्यायाम् 7.1।

---

1. वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 501 शे.—लघुपूर्वमित्यसमस्तपदद्वयम्।
2. वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 501 शे.—

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः ।

प्र.—ऋत्वर्थे प्राण्यर्थे च गम्यमाने प्रातिपदिकस्य आदिर् उदात्तो न भवति ।

हिन्दी—ऋतु तथा प्राणी—इन दोनों शब्दों के साथ आख्या शब्द का सम्बन्ध है । यहाँ आद्युदात्तता का निषेध किया गया है । तब यथाप्राप्त अन्तोदात्त स्वर होता है ।

सूत्रार्थ—ऋतु आख्या तथा प्राणी आख्या में वर्त्तमान प्रातिपदिक को आद्युदात्त नहीं होता है ।

उदा.—(1) वसन्तः—वसन्त शब्द ऋतु के अर्थ में प्रयुक्त है । अतः आद्युदात्त न हुआ । अन्तोदात्त हुआ । शेष अनुदात्त हुए ।

(2) कृकलासः—यह प्राणी अर्थ में वर्त्तमान है, अतः आद्युदात्त न हुआ । यथाप्राप्त अन्तोदात्त हुआ । शेष अनुदात्त हुए ।

विशेष—आचार्य हरदत्त ने 'प्राणिरजतादि.' सूत्र की व्याख्या में कपोत तथा मयूर शब्दों को 'लघावन्ते द्वयोश्च.' से मध्योदात्त माना है, जो चिन्त्य है । द्र.—एवञ्च 'कपोतमयूरशब्दौ 'लघावन्त' इति मध्योदात्तौ इति प्राणिरजतादिसूत्रस्थ-हरदत्तश्चिन्त्यः । (वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 501 शे.) ।

(46) धान्यानां च वृद्धक्षान्तानाम् [2.23]

पद.—धान्यानाम् 6.3, च—अव्य., वृद्धक्षाऽन्तानाम् 6.3 ।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः ।

प्र.—धान्यवाचिनां वृद्धसञ्ज्ञकानां ककारान्तानां षकारान्तानां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति ।

हिन्दी—अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना लिया जाता है । 'वृद्ध' शब्द के द्वारा वृद्धसञ्ज्ञा का ग्रहण होता है । 'क्ष्' के द्वारा ककार और षकार का ग्रहण होता है । 'क्ष' में अकार उच्चारणार्थ है । क् ष् अन्त—क्षन्त बनता है । 'अन्त' शब्द का क् तथा ष्—दोनों के साथ सम्बन्ध है ।

सूत्रार्थ—धान्यवाची जो वृद्धसञ्ज्ञक ककारान्त या षकारान्त प्रातिपदिक, उसे आद्युदात्त होता है ।

उदा.—(1) श्यामाकः—श्यामाक धान्यवाची है । इसकी वृद्ध सञ्ज्ञा है ।

'वृद्धिर्यस्याऽचामादिस्तद् वृद्धम्' से वृद्धसञ्ज्ञा होती है। यह प्रातिपदिक ककारान्त है। अतः आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) राजमाषः—धान्यवाची राजमाष प्रातिपदिक वृद्धसञ्ज्ञक है। यह षकारान्त है। पूर्ववत् आद्युदात्त हुआ।

(3) माषाः—पूर्ववत्।

विशेष—शेखरकार लिखते हैं कि 'माषाः' यह उदाहरण 'तृणधान्यानां.' फि.सू. पर दिया जा चुका है। अतः 'बालाक्षाः' उदाहरण दिया जाना चाहिये।

(क) सूत्रस्थ 'धान्यानाम्' का प्रयोजन है कि **धान्यवाची** जो वृद्धसञ्ज्ञक ककारान्त या षकारान्त प्रातिपदिक, उसे **आद्युदात्त** होता है। यथा—

(1) आलोकः—यह वृद्धसञ्ज्ञक तथा ककारान्त शब्द है, परन्तु धान्यवाची नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(ख) सूत्रस्थ 'वृद्ध' शब्द का प्रयोजन है कि धान्यवाची जो **वृद्धसञ्ज्ञक** ककारान्त या षकारान्त प्रातिपदिक, उसे आद्युदात्त होता है। यथा—

(2) चणकाः—यह ककारान्त प्रातिपदिक है तथा धान्यवाची भी है परन्तु यह वृद्धसञ्ज्ञक नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(ग) सूत्रस्थ 'क्षान्तानाम्' का प्रयोजन है कि धान्यवाची जो वृद्धसञ्ज्ञक **ककारान्त** अथवा **षकारान्त** प्रतिपदिक, उसे आद्युदात्त होता है। यथा—

(3) गोधूमाः—गोधूम शब्द धान्यवाची तथा वृद्ध सञ्ज्ञक है, परन्तु न तो ककारान्त है और न ही षकारान्त है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(47) **जनपदशब्दानामषन्तानाम्** [2.24]

पद.—जनपदशब्दानाम् 6.3, अषन्तानाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—जनपदवाचिनामजन्तानां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना लिया जाता है। 'अष्' अच् का पर्याय है। इसमें तदन्त विधि होकर 'अषन्तानाम्' ऐसा बन जाता है।

सूत्रार्थ—अजन्त व जनपदवाची प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) केकय—'केकय' जनपदवाची प्रातिपदिक है। यह अजन्त भी है। आद्युदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

विशेष—(क) सूत्रस्थ 'जनपदानाम्' पद का प्रयोजन है कि **जनपदवाची** जो अजन्त प्रातिपदिक, उसे आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) आम्र:—'आम्र' अजन्त प्रातिपदिक है, परन्तु जनपदवाची नहीं है। आद्युदात्त न हुआ। यथाप्राप्त अन्तोदात्त हुआ।

(ख) सूत्रस्थ 'अषन्तानाम्' का प्रयोजन है कि **अजन्त** जो जनपदवाची शब्द, उन्हें आद्युदात्त होता है। यथा—

(2) दरद्—'दरद्' शब्द जनपदवाची तो है, परन्तु अजन्त नहीं है। अत: आद्युदात्त न हुआ। यथाप्राप्त अन्तोदात्त हुआ।

(48) हयादीनामसंयुक्तलान्तानामन्तः पूर्वं वा [2.25]

पद.—हयादीनाम् 6.3, असंयुक्तलान्तानाम् 6.3, अन्त: 1.1, पूर्वम् 1.1, वा—अव्य.।

अनु.—पूर्ववद् अधिकार:।

प्र.—असंयोगपूर्वो यो लशब्दस्तदन्तानां हलादीनां प्रातिपदिकानामन्त्यात् पूर्वं यदक्षरं तदुदात्तं वा भवति।

हिन्दी—'हय्' हल् की प्राचीन सञ्ज्ञा है। 'हयादि' का अर्थ है—हल् वर्ण है आदि में जिसके। 'हल्' एक प्रत्याहार है। इसमें सभी व्यञ्जन वर्ण आ जाते हैं। 'संयोग' एक सञ्ज्ञा है। आचार्य पाणिनि ने 'हलोऽनन्तरा: संयोग:' से संयोग सञ्ज्ञा कही है। 'असंयुक्त' का अर्थ है—जिसकी संयोग सञ्ज्ञा न हो, ऐसा वर्ण-समुदाय। ध्यान रहे, दो या दो से अधिक हल् वर्णों की संयोग सञ्ज्ञा हुआ करती है।

'लान्त' का अर्थ है—लकार है अन्त में जिसके। 'असंयुक्तो लकारोऽन्ते यस्य स: असंयुक्तलान्त:, तेषाम्'। यह त्रिपद बहुव्रीहि हुआ। कुछ व्याख्याकार पूर्वशास्त्र (जनपदशब्दानामषन्तानाम् 2.24) से 'जनपदशब्दानाम्' का अनुवर्त्तन करते हैं।

'अन्तः' यहाँ पञ्चम्यर्थे प्रथमा जाननी चाहिये। इसका अन्वय 'पूर्वम्' शब्द के साथ है। इसका अर्थ है—अन्त्यात् पूर्वम् अर्थात् अन्त्य से जो पूर्व है, वह। 'वा' विकल्प के लिये है। एक पक्ष में कार्य का होना तथा द्वितीय पक्ष में कार्य न होना विकल्प कहलाता है।

सूत्रार्थ—हल् वर्ण है आदि में जिसके तथा असंयुक्त लकार है अन्त में जिसके, ऐसे जनपदवाची प्रातिपदिक के अन्त्य वर्ण से पूर्व उदात्त स्वर विकल्प से होता है।

उदा.—(1) हलंः—'हल' शब्द के आदि में हकार है जो हल् वर्ण है। इसके अन्त में लकार है जो असंयुक्त है। अतः इसके अन्त्य से पूर्व (हकारस्थ) अकार को उदात्त स्वर विकल्प से हुआ—हल॒ः। शेष अनुदात्त हुआ। अनुदात्त को स्वरित हुआ।

(2) ह॒लः—पक्ष में यथाप्राप्त अन्तोदात्त हुआ।

(3) प॒लल॑म्—पूर्ववत् अन्त्य से पूर्व को उदात्त स्वर हुआ। शेष को अनुदात्त हुये।

(4) प॒ल॒लम्—पक्ष में अन्तोदात्त हुआ।

(5) श॒लल॑म्—पूर्ववत् अन्त्य से पूर्व को उदात्त हुआ।

(6) श॒ल॒लम्—पक्ष में अन्तोदात्त हुआ।

(7) पञ्चाला॑ः—जिन व्याख्याकारों के मत में 'जनपदशब्दानाम्' का अनुवर्त्तन होता है, उनके मत में ये उदाहरण (7-8-9-10) हैं।

(8) पञ्चा॑लाः—पक्षे 'जनपदशब्दानामषन्तानाम्' से आद्युदात्त हुआ।

(9) को॒सला॑ः—अन्त्य से पूर्व उदात्त हुआ।

(10) कोस॑लाः—पक्ष में आद्युदात्त हुआ।

विशेष—(क) सूत्रस्थ 'हयादीनाम्' का प्रयोजन है कि **हल् वर्ण है आदि में** जिसके तथा असंयुक्त लकार है अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक के अन्त्य से पूर्व का विकल्प से उदात्त होता है।

(1) ए॒क॒लः—'एकल' असंयुक्त लकारान्त है परन्तु हलादि नहीं है। अतः अन्त्य से पूर्व को उदात्त न हुआ। यथाप्राप्त अन्तोदात्त हुआ।

(2) म॒ल्लः—'मल्ल' शब्द को आदि में हल् वर्ण (मकार) है तथा अन्त में

लकार है। इसके अन्त्य से पूर्व (मकारस्थ अकार) को पाक्षिक उदात्त स्वर प्राप्त हुआ। परन्तु 'ल्ल्' की संयोग सञ्ज्ञा है। पाक्षिक उदात्त न हुआ।

(49) इगन्तानां च द्व्यषाम् [2.26]

पद.—इगन्तानाम् 6.3, च—अव्य., द्व्यषाम् 6.3।

अनु.—पूर्ववद् अधिकारः।

प्र.—इगन्तानां द्व्यचां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—'अष्' यह अच् की प्राचीन सञ्ज्ञा है। अतः अष् के द्वारा सभी स्वर वर्णों का ग्रहण होता है। 'द्व्यष्' का अर्थ है—दो अच् वाला। 'इगन्त' का अर्थ है—इक् वर्ण है अन्त में जिसके। 'इक्' एक प्रत्याहार है। इसके द्वारा चार वर्णों (यथा—इ,उ,ऋ तथा ऌ) का ग्रहण होता है। अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचन-विपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—इक् वर्ण है अन्त में जिसके, ऐसे दो अच् वाले प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) कृषिः—'कृषि' शब्द इगन्त है तथा द्व्यच् शब्द है। आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

विशेष—कुछ विद्वान् यहाँ पूर्वशास्त्र से 'जनपदशब्दानाम्' का अनुवर्त्तन स्वीकार करते हैं। उनके मत में कुरवः इत्यादि उदाहरण होते हैं।

सूत्र में 'द्व्यषाम्' कथन से 'वसातयः' को आद्युदात्त स्वर नहीं होता है। 'इगन्त' कथन से 'अङ्गाः' यह आद्युदात्त नहीं होता है।

○

अथ तृतीयः पादः

(50) अथ द्वितीयं प्रागीषात् [3.1]

पद.—अथ—अव्य., द्वितीयम् 1.1, प्राक्—अव्य., ईषात् 5.1 ।

अनु.—'फिषोऽन्त उदात्तः' (फि. 1.1) इत्यतः 'फिषः' 'उदात्तश्चे'ति पदद्वयम् अनुवर्त्तते ।

प्र.—अधिकारोऽयम् 'ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा' (फि. 3.17) इत्येतस्मात् प्राक् । फि. 3.17 सूत्रात् प्राक् प्रातिपदिकस्य द्वितीयमक्षरमुदात्तं भवतीति वेदितव्यम् ।

अर्थ—'अथ' शब्द प्रकरण के आरम्भ का द्योतक है । 'द्वितीयम्' का अर्थ है—द्वितीय अक्षर । 'ईषात्' पद अवधि को निर्धारित करता है । इसके द्वारा 'ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा' (फि. 3.17) का ग्रहण होता है । 'प्राक् ईषात्' का तात्पर्य है कि प्रकृत सूत्र का कार्यक्षेत्र 'ईषान्तस्य हयादे.' सूत्र से पूर्व-पूर्व है । इसकी अवधि में 'ईषान्तस्य.' सूत्र नहीं आता है ।

सूत्रार्थ—'ईषान्तस्य हयादे.' सूत्र से पूर्व जो-जो कहा जायेगा, उस-उस का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है—ऐसा अधिकार है ।

(51) त्र्यचां प्राङ् मकरात् [3.2]

पद.—त्र्यचाम् 6.3, प्राक्—अव्य., मकरात् 5.1 ।

अनु.—फिषः, उदात्तः इति अनुवर्त्तते । पूर्ववच्चाऽधिकारः बोध्यः ।

प्र.—अधिकारोऽयं 'मकरवरूढ.' (फि. 3.8) इत्यतः प्राग् । फि. 3.8 सूत्रात् प्राक् त्र्यचां प्रातिपदिकानां द्वितीयमक्षरमुदात्तं भवतीति वेदितव्यम् ।

हिन्दी—'त्र्यचाम्' का अर्थ है—तीन अच् वाला, उसका । यह 'फिषः' का विशेषण है । वचनविपरिणाम के द्वारा 'फिषः' को बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है । 'मकरात्' पद अवधि-निर्धारक है । इसके द्वारा 'मकरवरूढपारेवत.' (फि. 3.8) सूत्र का ग्रहण होता है । 'प्राङ् मकरात्' का अभिप्राय है कि 'मकरवरूढ.' सूत्र से पूर्व-पूर्व तक ।

सूत्रार्थ—'मकरवरूढ.' सूत्र से पूर्व तीन अच् वाले प्रातिपदिकों का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। ऐसा अधिकार जानना चाहिये।

(52) स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम् [3.3]

पद.—स्वाङ्गानाम् 6.3, अकुर्वादीनाम् 6.3।

अनु.—फिषः, उदात्तः, द्वितीयम्, त्र्यचाम्—इत्येतेऽत्राऽनुवर्त्तन्ते।

प्र.—कवर्गीयवर्ण-रेफ-वकारादिवर्जितानां स्वाङ्गवाचिनां त्र्यचां प्रातिपदिकानां द्वितीयमक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—'स्वाङ्ग' शब्द का लक्षण (फि.सू. 1.9) पर देखिये। 'अकुर्वादीनाम्' में 'अ' के द्वारा प्रतिषेध किया गया है। 'कु' का अर्थ है—कवर्गीय वर्ण। 'वादि' का अर्थ है—वकार है आदि में जिसके। 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—कवर्गीय अक्षर, रेफ और वकारादि इनसे रहित स्वाङ्गवाची तथा तीन अचों वाले प्रातिपदिकों का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) ल॒लाटं॑म्—'ललाट' शब्द स्वाङ्गवाची है। इसमें न तो कवर्गीय कोई वर्ण है और न ही रेफ है। यह वकारादि भी नहीं है। यह तीन अच् वाला है। अतः द्वितीय अक्षर (लकारस्थ आकार) उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

विशेष—(क) 'अकुर्वादीनाम्' का प्रयोजन है कि **कवर्गीय वर्ण, रेफ तथा वादि**—इनसे **रहित** तीन अच् वाले स्वाङ्गवाची प्रातिपदिकों का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(1) क॒पोल॑ः—'क॒पोल॑' शब्द स्वाङ्गवाची है तथा तीन अचों वाला है। इसके द्वितीय अक्षर को उदात्त प्राप्त हुआ, परन्तु 'कपोल' में कवर्गीय वर्ण (ककार) है। अतः द्वितीय अक्षर उदात्त न हुआ। 'लघावन्ते.' (फि. 2.19) से मध्योदात्त हुआ।

(2) रस॑ना—'रसना' शब्द तीन अचों वाला है। यह स्वाङ्गवाची है। परन्तु इसमें रेफ है, अतः इसका द्वितीय अक्षर उदात्त नहीं होता है। 'स्वाङ्गशिटा-मदन्तानाम्' (फि. 2.6) से आद्युदात्त हुआ।

(3) वद॑नम्—'वदन' शब्द स्वाङ्गवाची तथा तीन अचों वाला है। वकारादि होने से प्रकृत सूत्र प्राप्त न हुआ। 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' से आद्युदात्त हुआ।

(53) मादीनां च [3.4]

पद.—मादीनाम् 6.3, च—अव्य.।

अनु.—फिषः, द्वितीयम्, उदात्तः, त्र्यचाम्—इत्येतानि पदानि अनुवर्त्तन्ते।

प्र.—मकारादीनां त्र्यचां प्रातिपदिकानां द्वितीयम् अक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—'मादि' का अर्थ है—मकार है आदि में जिसके। 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—तीन अचों वाले मकारादि प्रातिपदिकों का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) मु॑कर॑ः—'मकर' शब्द तीन अच् वाला है। मकारादि है। इसका द्वितीय अक्षर (ककारस्थ अकार) उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) मु॑लय॑ः—पूर्ववत् द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(3) मु॑हेन्द्र॑ः—पूर्ववत्।

विशेष—(क) 'मादीनाम्' का प्रयोजन है कि मकारादि त्र्यच् प्रातिपदिक का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(1) वद॑नम्—'वदन' शब्द त्र्यच् है परन्तु मकारादि नहीं है। इसका द्वितीय अक्षर उदात्त न हुआ। 'स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्' से आद्युदात्त हुआ।

(54) शादीनां शाकानाम् [3.5]

पद.—शादीनाम् 6.3, शाकानाम् 6.3।

अनु.—फिषः द्वितीयम् उदात्तः त्र्यचाम्—इत्येतानि पदान्यनुवर्त्तन्ते।

प्र.—शकारादीनां शाकवाचिनां त्र्यचां प्रातिपदिकानां द्वितीयम् अक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—'शादि' का अर्थ है—शकारादि। 'शाक' का अर्थ है—शाकवाची। 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—तीन अच् वाले, शकारादि तथा शाकवाची प्रातिपदिकों का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) शीतन्यां—'शीतन्या' शाकवाची शब्द है। यह शकारादि शब्द है। इसमें तीन अच् हैं। द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) शतपुष्पा—पूर्ववत्।

विशेष—कुछ विद्वान् 'सादीनां शाकानाम्' इस प्रकार प्रकृत सूत्र का स्वरूप मानते हैं। उनके अनुसार 'सर्षपाः' उदाहरण है[1], परन्तु 'सर्षप' शब्द के द्वितीय अक्षर को उदात्त स्वर अग्रिम वक्ष्यमाण सूत्र 'पान्तानां गुर्वादीनाम्' (फि. 3.6) के द्वारा सिद्ध ही है। अतः यहाँ कोई अन्य सकारादि शाकवाची त्र्यच् शब्द का अन्वेषण करना चाहिये।

(55) पान्तानां गुर्वादीनाम् [3.6]

पद.—पान्तानाम् 6.3, गुर्वादीनाम् 6.3।

अनु.—फिषः उदात्तः द्वितीयम् त्र्यचाम् इत्येतान्यनुवर्तन्ते।

प्र.—गुरुसञ्ज्ञकादीनां पकारान्तानां त्र्यचां प्रातिपदिकानां द्वितीयम् अक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—'पान्त' का अर्थ है—पकारान्त। 'गुर्वादि' का अर्थ है—गुरु वर्ण है आदि में जिसके। 'दीर्घञ्च' (पा. 1.4.12) तथा 'संयोगे गुरु' (पा. 1.4.11)—इन दो सूत्रों के द्वारा गुरुसञ्ज्ञा होती है। 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—पकार है अन्त में जिसके तथा गुरु वर्ण है आदि में जिसके, ऐसे त्र्यच् प्रातिपदिकों को द्वितीय अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) पादपः—'पादप' शब्द पकारान्त है। इसका आदि अच् आकार है। 'दीर्घञ्च' से इसकी गुरु सञ्ज्ञा है। यह तीन अचों वाला है। इसका द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) आतपः—पूर्ववत्।

(3) सर्षपाः—सकारस्थ अकार की 'संयोगे गुरु' से गुरुसञ्ज्ञा होती है। शेष पूर्ववत्।

1. वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 503, सुबो.।

विशेष—(क) 'गुर्वादीनाम्' का प्रयोजन है कि **गुरु वर्ण है आदि में जिसके**, ऐसे त्र्यच् व पकारान्त शब्द का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(1) अनूपम्—'अनूप' शब्द पकारान्त है तथा त्र्यच् है परन्तु आदि वर्ण गुरु नहीं प्रत्युत लघुसञ्ज्ञक है। अतः इसका द्वितीय अक्षर उदात्त न हुआ। 'अनोरप्रधानकनीयसी' (पा. 6.2.190) से अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए।

(2) कुतपः—पूर्ववत्।

(ख) 'पान्तानाम्' का प्रयोजन है कि **पकारान्त** जो गुर्वादि व त्र्यच् प्रातिपदिक, उसका द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(3) पाटला—आदि अच् (आकार) की गुरु सञ्ज्ञा है। पाटला शब्द त्र्यच् है, परन्तु यह पकारान्त नहीं है। अतः द्वितीय अक्षर उदात्त न हुआ। 'पाटलाऽपालङ्का.' (फि. 1.2) से अन्तोदात्त हुआ।

(ग) अनुवृत्त 'त्र्यचाम्' का प्रयोजन है कि **तीन अच् वाला** पकारान्त व गुर्वादि जो प्रातिपदिक, उसका द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(4) नीपम्—'नीप' पकारान्त है। इसका आदि अच् (आकार) की गुरु सञ्ज्ञा है। परन्तु यह त्र्यच् नहीं, प्रत्युत द्व्यच् है। अतः प्रकृत सूत्र प्रवृत्त न हुआ। 'नेरनिधाने' से अन्तोदात्त हुआ।

(56) युतान्यण्यन्तानाम् [3.7]

पद.—युत-अनि-अणि-अन्तानाम् 6.3।

अनु.—फिषः द्वितीयम् उदात्तः त्र्यचाम् इत्येतानि अनुवर्त्तन्ते।

प्र.—युतान्तानाम् अन्यन्तानाम् अण्यन्तानां त्र्यचां प्रातिपदिकानां द्वितीयम् अक्षरमुदात्तं भवति।

हिन्दी—'युत' शब्द है। 'अनि' और 'अणि'—ये प्रत्यय हैं। उणादि कोष में निम्नलिखित सूत्रों के द्वारा 'अनि' प्रत्यय का विधान है। यथा—

(i) अर्त्तिसृधृधम्यम्यश्य. (उणा. 2.104)।
(ii) आङि शुषेः सनश्छन्दसि (उणा. 2.105)।
(iii) कृषेरादेश्च धः (उणा. 2.106)।
(iv) अदेर्मुट् च (उणा. 2.107)।

(v) वृतेश्च (उणा. 2.108)।

(vi) क्षिपेः किच्च (उणा. 2.109)।

'युतान्यण्यन्तानाम्' द्वन्द्व समास है। इसके प्रत्येक पद के साथ 'अन्त' शब्द का योग होता है। यथा—युतान्तानाम्, अन्यन्तानाम्, अण्यन्तानाम्। 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—युतान्त, अनिप्रत्ययान्त, अणिप्रत्ययान्त त्र्यच् प्रातिपदिकों का द्वितीय अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) अ॒युत॑म्—युत शब्द अन्त में है। द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) धृ॒मनिः—'अतिसृधृधम्यम्यश्यवि.' (उणा. 2.104) से यह शब्द अनिप्रत्ययान्त है। द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(3) वि॒पणिः—यह शब्द त्र्यच् है। 'सर्वधातुभ्य इन्' (उणा. 4.119) से इन् प्रत्ययान्त है। पूर्ववत् द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। उणादि कोष में 'अणि' कोई प्रत्यय उपलब्ध नहीं है। 'सर्वधातुभ्य इन्' सूत्र की वृत्ति में 'विपणि' को इन्—प्रत्ययान्त दर्शाया गया है।

(57) मकरवरूढपारेवतवितस्तेक्ष्वार्जिद्राक्षाकलोमा-काष्ठापेष्ठाकाशीनामादिर्वा [3.8]

पद.—मकरवरूढपारेवतवितस्तेक्ष्वार्जिद्राक्षाकलोमाकाष्ठापेष्ठाकाशीनाम् 6.3, आदिः 1.1, वा—अव्य.।

अनु.—फिषः उदात्तः द्वितीयम् इत्येतान्यनुवर्त्तन्ते।

प्र.—मकरवरूढपारेवतवितस्तेक्ष्वार्जिद्राक्षाकलोमाकाष्ठापेष्ठाकाशीनां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो वा भवति। पक्षे द्वितीयम् अक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—प्रकृत सूत्र के द्वारा आद्युदात्त विकल्प से होता है। पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीय अक्षर को उदात्त होता है।

सूत्रार्थ—मकर, वरूढ, पारेवत, वितस्ता, इक्षु, आर्जि, द्राक्षा, कला, उमा, काष्ठा, पेष्ठा तथा काशि—इन प्रातिपदिकों को आद्युदात्त विकल्प से होता है। पक्ष में द्वितीय अक्षर को उदात्त होता है।

उदा.—(1) मकरः—आद्युदात्त हुआ।
(2) मकरः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(3) वरूढः—आद्युदात्त।
(4) वरूढः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(5) पारेवतः—आद्युदात्त।
(6) पारेवतः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(7) वितस्ता—आद्युदात्त।
(8) वितस्ता—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(9) इक्षुः—आद्युदात्त हुआ।
(10) इक्षुः—पक्ष में।
(11) आर्जिः—आद्युदात्त हुआ।
(12) आर्जिः—पक्ष में।
(13) द्राक्षा—आद्युदात्त हुआ।
(14) द्राक्षा—पक्ष में।
(15) कला—आद्युदात्त हुआ।
(16) कला—पक्ष में।
(17) उमा—आद्युदात्त हुआ।
(18) उमा—पक्ष में।
(19) काष्ठा—आद्युदात्त हुआ।
(20) काष्ठा—पक्ष में।
(21) पेष्ठा—आद्युदात्त हुआ।
(22) पेष्ठा—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(23) काशिः—आद्युदात्त।
(24) काशिः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

सुबोधिनीकार तथा शेखरकार के अनुसार 'काशीन' शब्द है। द्र.—'काशीनानामिति वक्तव्ये नुडभाव आर्षः' (सुबो.)। 'काशीनानामिति वक्तव्ये नुडभाव आर्षः।....काशीनम्'। (शे.)।

शेखरकार के अनुसार 'वरूढ' के स्थान पर 'वकुट' तथा 'पेष्ठा' के स्थान पर 'पैश्रा' पाठ भी प्राप्त होता है। द्र.—"केचित्तु 'मकरवकुटपारेवते'ति 'काष्ठाप्रैश्रे'ति पठन्ति"। (शे.)

(58) **छन्दसि च** [3.9]

पद.—छन्दसि 7.1, च—अव्य.।

अनु.—फिषः, द्वितीयम्, आदिः, वा, उदात्तः इत्येतानि पदान्यनुवर्त्तन्ते।

प्र.—छन्दसि विषये पूर्वोक्तमकरादीनां अन्येषां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो वा भवति। पक्षे द्वितीयमक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—'फिषः' को पूर्ववत् 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—वेद के विषय में मकार आदि प्रातिपदिकों से अतिरिक्त को आद्युदात्त विकल्प से होता है। पक्ष में द्वितीय अक्षर को उदात्त होता है।

उदा.—(1) मकंरः—आद्युदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) मुकंरः—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ। इसी प्रकार मकर आदि अन्य शब्दों के विषय में जानना चाहिये।

(59) **कर्दमादीनां च** [3.10]

पद.—कर्दमादीनाम् 6.3, च—अव्य.।

अनु.—फिषः, द्वितीयम्, आदिः वा, उदात्तः इत्येतान्यनुवर्त्तन्ते।

प्र.—कर्दमादिगणपठितानां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो वा भवति। पक्षे द्वितीयमक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—कर्दमादि एक गण है। 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—कर्दमादि गण में पठित प्रातिपदिकों को आद्युदात्त विकल्प से होता है। पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) कर्दमः—आद्युदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) कुर्दमः—पक्ष में द्वितीयाक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(3) कुलंटा—आद्युदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(4) कुलटां—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(5) उदकम्—आद्युदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(6) उदकम्—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(7) गान्धारिः—आद्युदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(8) गान्धारिः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(9) काश्यपः—आद्युदात्त हुआ।

(10) काश्यपः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(60) सुगन्धितेजनस्य ते वा [3.11]

पद.—सुगन्धितेजनस्य 6.1, ते—लुप्तविभक्त्यन्तरूपम्, वा—अव्य.।

अनु.—फिषः, उदात्तः, आदिः, वा, द्वितीयम् इत्येतान्यनुवर्त्तन्ते।

प्र.—सुगन्धितेजनप्रातिपदिकस्य 'ते' इत्यक्षरम् आद्यम् अक्षरं द्वितीयम् अक्षरं पर्यायेणोदात्तानि भवन्ति।

हिन्दी—'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—'सुगन्धितेजन' प्रातिपदिक का 'ते' अक्षर, द्वितीय अक्षर तथा आदि अक्षर—ये पर्यायेण उदात्त होते हैं।

पर्यायेण का अभिप्राय है कि एक पक्ष में 'ते' अक्षर उदात्त होता है, द्वितीय पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त होता है तथा तृतीय पक्ष में आदि अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) सुगन्धितेजनः—'ते' अक्षर को उदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुये। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) सुगन्धितेजनः—पक्ष में द्वितीयाक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(3) सुगन्धितेजनः—पक्ष में आद्युदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(61) नपः फलान्तानाम् [3.12]

पद.—नपः 6.1, फलान्तानाम् 6.3।

अनु.—फिषः, उदात्तः, द्वितीयम्, आदिः, वा इत्यनुवर्त्तन्ते।

प्र.—नपुँसकलिङ्गे वर्त्तमानानां फलान्तानां प्रातिपदिकानाम् आद्यम् अक्षरम् उदात्तं वा भवति। पक्षे द्वितीयम् अक्षरम् उदात्तं भवति।

हिन्दी—'नप्' यह नपुँसकलिङ्ग का पर्याय है। 'फलान्त' का अर्थ है—'फल' शब्द है अन्त में जिसके। 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना लिया जाता है। 'नपः' पद को भी वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'नपाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—फल शब्द है अन्त में जिसके ऐसे नपुँसकलिङ्ग प्रातिपदिकों के आद्य अक्षर व द्वितीय अक्षर पर्यायेण उदात्त होते हैं।

उदा.—(1) राजादनफलम्—'राजादनफल' एक प्रातिपदिक है। इसके अन्त में 'फल' शब्द है। यह नपुँसकलिङ्ग है। यह आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) राजादनफलम्—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

विशेष—(क) 'नपः' का प्रयोजन है कि **नपुँसकलिङ्ग** प्रातिपदिक को ही आद्युदात्त व द्वितीय अक्षर उदात्त होते हैं। यथा—

(1) दासीफलो वृक्षः—'दासीफल' प्रातिपदिक के अन्त में फल शब्द है। परन्तु यह नपुँसकलिङ्ग नहीं है। अतः आद्युदात्त और द्वितीय अक्षर उदात्त न हुए।

(ख) कुछ विद्वान् प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'ले फो नपः' न्यास उचित मानते हैं। तदनु—नपुँसकलिङ्ग प्रातिपदिक का फकार उदात्त होता है, लकार परे रहते—यह सूत्रार्थ गृहीत होता है। तब फलम्, सुफलम् इत्यादि लक्ष्यों में स्वरसिद्धि हो जाती है। अन्य विद्वान् 'फाशब्दस्य' इस प्रकार व्याख्या करके 'सुफालम्' उदाहरण प्रस्तुत करते हैं[1]।

(62) यान्तस्यान्त्यात् पूर्वम् [3.13]

पद.—यान्तस्य 6.1 अन्त्यात् 5.1, पूर्ववम् 1.1।

अनु.—फिषः, उदात्त इति पदद्वयम् अत्राऽनुवर्त्तते।

प्र.—यशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्याऽन्त्यात् पूर्वम् अक्षरम् उदात्तं भवति।

1. वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 50 4 (शे.)।

हिन्दी—'यान्त' शब्द में यकारस्थ अकार मुखसुखार्थ है। 'यान्त' का अर्थ है—यकारान्त। 'अन्त्यात्' पञ्चम्यन्त पद है। 'पूर्वम्' पद के योग में यहाँ पञ्चमी आई है। अतः 'तस्मादित्युत्तरस्य' परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है।

सूत्रार्थ—यकारान्त प्रातिपदिक के अन्त्य अक्षर से पूर्व जो अक्षर, वह उदात्त होता है।

उदा.—(1) कुलायः—कुलाय यकारान्त प्रातिपदिक है। अन्त्य अच् यकारस्थ अकार है। इससे पूर्व लकारस्थ आकार है। आकार उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) गवयः—पूर्ववत्।

(3) मलयः—पूर्ववत्।

प्रकृत सूत्र में 'अन्त्यात् पूर्वम्' का ग्रहण कुवलय शब्द के लिये किया गया है।

(63) थान्तस्य च नालघुनी [3.14]

पद.—थान्तस्य 6.1, च—अव्य., नालघुनी 1.2।

अनु.—फिषः उदात्तश्चेति पदद्वयमत्र अनुवर्त्तते।

प्र.—थकारान्तस्य प्रातिपदिकस्य नाशब्दो लघुसञ्ज्ञकश्च उदात्ते भवतः।

हिन्दी—ना च लघु च—नालघुनी—यहाँ द्वन्द्वसमास हुआ। 'ना' का अर्थ है—'ना' अक्षर। 'लघु' का अर्थ है—लघुसञ्ज्ञक वर्ण। 'ह्रस्वं लघु' से लघुसञ्ज्ञा होती है। पूर्ववत् थकारस्थ अकार उच्चारणार्थ है।

सूत्रार्थ—थकारान्त प्रातिपदिक का 'ना' अक्षर तथा लघुसञ्ज्ञक अक्षर—ये पर्यायेण उदात्त होते हैं।

उदा.—(1) सनाथा सभा—यह थकारान्त प्रातिपदिक है। 'ना' अक्षर उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) सनाथा—पक्ष में लघु अक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

कुछ विद्वान् प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'आन्तस्य च नालघुनी' पाठ स्वीकार करते हैं। तदनु—आकारान्त और 'ना' शब्द का लघुसञ्ज्ञक अक्षर अन्त्य से पूर्व अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(3) नानां—पूर्ववत्।
(4) नासां—पूर्ववत्।
(5) दिवां—लघुसञ्ज्ञक उदात्त हुआ।
(6) सुधां—पूर्ववत्।
(7) मुधां—पूर्ववत्।

(64) शिशुमारोदुम्बरबलीवर्दोष्ट्रारपुरूरवसाम् [3.15]

पद—शिशुमारोदुम्बरबलीवर्दोष्ट्रारपुरूरवसाम् 6.3।

अनु.—फिषः, उदात्तः द्वितीयं इत्येतेषामन्त्राऽधिकारः। 'यान्तस्याऽन्त्यात् पूर्वम्' (फि.3.13) इत्यतः 'अन्त्यात् पूर्वम्' इति अनुवर्त्तते।

प्र.—शिशुमारोदुम्बरबलीवर्दोष्ट्रारपुरूरवसां प्रातिपदिकानाम् अन्त्यात् पूर्वमक्षरमुदात्तं भवति। पक्षे द्वितीयमुदात्तम्।

हिन्दी—अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है। प्रकृत सूत्र के द्वारा द्वितीय अक्षर तथा अन्त्य से पूर्व को उदात्त होता है। यह पर्यायेण होता है।

सूत्रार्थ—शिशुमार, उदुम्बर, बलीवर्द, उष्ट्रार, पुरूरवस्—इन प्रातिपदिकों का द्वितीय अक्षर तथा अन्त्य से पूर्व अक्षर पर्यायेण उदात्त होते हैं।

उदा.—(1) शि॒शुमा॑रः—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(2) शि॒शुमा॑रः—अन्त्य से पूर्व अक्षर उदात्त हुआ।
(3) उ॒दु॒म्ब॑रः—द्वितीय अक्षर उदात्त।
(4) उ॒दु॒म्ब॑रः—अन्त्य से पूर्व उदात्त।
(5) ब॒लीव॑र्दः—द्वितीय अक्षर उदात्त।
(6) ब॒लीव॑र्दः—अन्त्य से पूर्व उदात्त।
(7) उ॒ष्ट्रा॑रः—द्वितीय अक्षर उदात्त। उष्टारेति रेफवर्जितमपि पाठान्तरम् इति शेखरकारः।
(8) उ॒ष्ट्रा॑रः—अन्त्य से पूर्व उदात्त।
(9) पु॒रू॒र॑वाः—द्वितीय अक्षर उदात्त।
(10) पु॒रू॒र॑वाः—अन्त्य से पूर्व उदात्त।

कुछ स्थलों पर अनुस्वार घटित 'शिंशुमार' पाठ उपलब्ध होता है। अमर-कोश में अनुस्वार वर्जित 'शिशुमार' शब्द ही प्राप्त होता है।

(65) साङ्काश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानाम् [3.16]

पद.—साङ्काश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानाम् 6.3

अनु.—फिषः उदात्तश्चेति अधिकारः। आदिर्वा इति मण्डूकप्लुतिन्यायेनाऽनुवर्त्तते। द्वितीयमित्यपि अधिक्रियते।

प्र.—साङ्काश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानां प्रातिपदिकानाम् आदिर्वोदात्तो भवति। पक्षे द्वितीयमक्षरमुदात्तं भवति।

हिन्दी.—'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना लिया जाता है। यहाँ पूर्ववत् आदि अक्षर तथा द्वितीय अक्षर पर्यायेण उदात्त होते हैं।

सूत्रार्थ—साङ्काश्य, काम्पिल्य, नासिक्य तथा दार्वाघाट इन प्रातिपदिकों का आदि अक्षर और द्वितीय अक्षर पर्यायेण उदात्त होते हैं।

उदा.—(1) साङ्काश्यः—आदि अक्षर उदात्त हुआ। साङ्काश्य शब्द 'वुञ्छण०' (पा. 4.2.79.) से ण्यन्त है।

(2) साङ्काश्यः—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(3) काम्पिल्यः—आदि अक्षर उदात्त हुआ। यह भी पूर्ववत् ण्यन्त है।

(4) काम्पिल्यः—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(5) नासिक्यः—आदि अक्षर उदात्त हुआ।

(6) नासिक्यः—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(7) दार्वाघाटः—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(8) दार्वाघाटः—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(शङ्का) आचार्य कैयट ने 'पद्दन्नस्' सूत्र की व्याख्या में साङ्काश्य आदि शब्दों को अन्तोदात्त भी कहा है। द्र.—'राजन्यसाङ्काश्यकाम्पिल्यनासिक्यदार्वाघाटानामादिर्वाऽन्तो वा'।

(समा.) वस्तुतः कैयट के वचन के विषय में यहाँ 'अन्त' शब्द के द्वारा आदि की अपेक्षा अन्त (अर्थात् द्वितीय) का ही ग्रहण होता है। अतः कोई विरोध नहीं है। इस आशय की पुष्टि काशिकाकार के वचन से भी होती है। 'सप्तमी सिद्ध.' इस

सूत्र की व्याख्या में काशिकाकार ने 'एषामन्तः पूर्वं वा' इस प्रकार कहा है। यहाँ 'पूर्व' शब्द के द्वारा आदि, तदपेक्षया जो अन्त, उसका ग्रहण 'अन्त' शब्द से होता है।

प्रकृत सूत्र में पूर्वशास्त्र 'यान्तस्याऽन्त्यात् पूर्वम्' (फि. 3.13) से 'अन्त्यात् पूर्वम्' का अनुवर्त्तन नहीं है। यदि यह अनुवर्त्तन इष्ट होता तो प्रकृत सूत्र में साङ्काश्य, काम्पिल्य तथा नासिक्य—इन तीन यकारान्त शब्दों का ग्रहण व्यर्थ हो जाता। कारण कि इन्हें 'यान्तस्याऽन्त्यात् पूर्वम्' से स्वर निर्बाध सिद्ध था। अतः सूत्र में साङ्काश्य आदि तीन शब्दों के ग्रहण से ज्ञापित होता है कि प्रकृत में 'अन्त्यात् पूर्वम्' का अनुवर्त्तन नहीं है।

(66) ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा [3.17.]

पद.—ईषान्तस्य 6.1 हयादेः 6.1, आदिः 1.1, वा—अव्य.।

अनु.—फिषः द्वितीयम् उदात्त इत्येतेऽनुवर्त्तन्ते।

प्र.—'ईषा'शब्दान्तस्य हलादेः प्रातिपदिकस्याऽऽदिरक्षरम् उदात्तं वा भवति। पक्षे यथाप्राप्तं द्वितीयमक्षरम् उदात्तम्।

हिन्दी—'हय्' यह हल् की प्राचीन सञ्ज्ञा है। 'हयादि' का अर्थ है—हल् वर्ण है आदि में जिसके। 'ईषान्त' का अर्थ है—'ईषा' शब्द है अन्त में जिसके। 'वा' का अर्थ है—विकल्प। अतः पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। 'हयादेः' तथा 'ईषान्तस्य'—ये दोनों पद 'फिषः' के विशेषण हैं।

सूत्रार्थ—हल् वर्ण है आदि में जिसके तथा ईषा शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे प्रातिपदिक को आद्युदात्त होता है, विकल्प से। पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीय अक्षर उदात्त होता है। पूर्वशास्त्र से 'आदिर्वा' इसकी अनुवृत्ति सुलभ रहने पर भी प्रकृत में इसका ग्रहण स्पष्टता के लिये हैं।

(1) हलीषा—आदि अक्षर उदात्त हुआ।
(2) हलीषा—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(3) मनीषा—आद्युदात्त हुआ।
(4) मनीषा—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।
(5) लाङ्गलीषा—आद्युदात्त हुआ।
(6) लाङ्गलीषा—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

विशेष—(क) सूत्रस्थ 'ईषान्तस्य' का प्रयोजन है कि **ईषाशब्दान्त** तथा हलादि प्रातिपदिक को विकल्प से आद्युदात्त होता है। यथा—

(1) मञ्जूषा—यह हलादि शब्द है परन्तु इसके अन्त में 'ईषा' शब्द नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(ख) सूत्रस्थ 'हयादेः' का प्रयोजन है कि **हलादि** और ईषाशब्दान्त प्रातिपदिक को आद्युदात्त विकल्प से होता है। यथा—

(2) अम्बरीषम्—ईषाशब्दान्त तो है परन्तु हलादि नहीं है। अतः आद्युदात्त न हुआ।

(67) उशीरदासेरकपालपलालशैवालश्यामाकशारीरशरावहृदय-हिरण्याऽरण्याऽपत्यदेवराणाम् [3.18]

पद.—उशीर-दासेर-कपाल-पलाल-शैवाल-श्यामाक-शारीर-शराव-हृदय-हिरण्य-अरण्य-अपत्य-देवराणाम् 6.3।

अनु.—फिषः आदिः उदात्तश्चेति अनुवर्त्तन्ते।

प्र.—उशीरदासेरकपालपलालशैवालश्यामाकशारीरशरावहृदयहिरण्याऽरण्याऽपत्यदेवराणां प्रातिपदिकानाम् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—सूत्र में अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—उशीर, दासेर[1], कपाल, पलाल, शैवाल, श्यामाक, शारीर, शराव, हृदय, हिरण्य, अरण्य, अपत्य और देवर—इन प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) उशीरम्—आद्युदात्त हुआ।

(2) दासेरः—आद्युदात्त हुआ।

(3) कपालः—आद्युदात्त हुआ।

(4) पलालः—आद्युदात्त हुआ।

---

1. 'दाशेर' इति तालव्यशकारघटितशब्दो भट्टोजिसम्मतः। (द्र.—वै.सि.कौ. चतुर्थो भागः; श.कौ. द्वितीयो भागः)

दन्त्यसकारघटितपाठः शेखरकारसम्मतः। (द्र.—वै.सि.कौ. भाग 4, पृ. 501. शे.)

(5) शैवा॑लः—पूर्ववत्।
(6) श्यामा॑कः—पूर्ववत्।
(7) शार॑ीरः—पूर्ववत्।
(8) शरा॑वः—पूर्ववत्।
(9) हृद॑यम्—पूर्ववत्।
(10) हिर॑ण्यम्—पूर्ववत्।
(11) अर॑ण्यम्—पूर्ववत्।
(12) अप॑त्यम्—पूर्ववत्।
(13) देव॑रः—पूर्ववत्।

विशेष—(शङ्का) 'श्यामाक' शब्द धान्यवाची, वृद्धसञ्ज्ञक तथा ककारान्त है। इसे 'धान्यानां च वृद्धक्षान्तानाम्' (फि. 2.23) से आद्युदात्त स्वर प्राप्त है। तब प्रकृत सूत्र में 'श्यामाक' शब्द का ग्रहण व्यर्थ है ?

(समा.) 'श्यामाक' शब्द धान्यवाची तथा अधान्यवाची—दोनों प्रकार का प्राप्त होता है। धान्यवाची श्यामाक शब्द को आद्युदात्तत्व 'धान्यानां च.' से होता है तथा अधान्यवाची श्यामाक शब्द को आद्युदात्तत्व 'उशीरदासेरकपालपलाल.' से होता है। ताकि 'श्यामां कायतीति श्यामाकः' यहाँ भी आद्युदात्त हो सके।[1]

सुबोधिनीकार के अनुसार प्रकृत में 'देवर' शब्द का ग्रहण है। कारण कि इसे 'लघावन्ते द्वयोश्च.' (फि. 2.19) से ही स्वर सिद्ध है। शेखरकार के अनुसार 'लघावन्ते.' शास्त्र अनित्य है। यह ज्ञापित करने के लिये आचार्य ने प्रकृत में 'देवर' शब्द का ग्रहण किया है। कुछ विद्वान् 'देवर' शब्द का पाठ घृतादिगण में मानते हैं। तदनु—यह अन्तोदात्त होता है। अतः पक्ष में आद्युदात्तत्व के लिये प्रकृत में देवर शब्द का योग है। कुछ विद्वान् यहाँ 'वा' पद का अनुवर्त्तन स्वीकार नहीं करते हैं।

(68) महिष्यषाढयोर्जायेष्टकाख्या चेत् [3.19]

पद.—महिष्यषाढयोर् 6.2, जायेष्टकाख्या 1.1, चेत्—अव्य.।

अनु.—फिषः आदिः उदात्तः इत्येतेऽनुवर्त्तन्ते।

---

1. 'उशीरदासेरकपालपलालशैवालश्यामाकेति सूत्रे श्यामाकग्रहणं त्वधान्यवाचकश्यामाकग्रहणार्थम्। (वै.सि.कौ. भाग. 4, पृ. 501, शे.)

प्र.—महिष्यषाढयोः प्रातिपदिकयोर् आदिर् उदात्तः स्याद् यथासङ्ख्यं जायाख्ययामिष्टकाख्यायाम् च।

हिन्दी—'महिष्यषाढयोः' पद 'फिषः' का विशेषण है। अतः वचनविपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त 'फिषोः' बना लिया जाता है। 'जायेष्टका' यहाँ द्वन्द्व समास है। 'जाया' और 'इष्टका' ये दो शब्द हैं। 'महिषी' और 'इष्टका' ये भी दो शब्द हैं। यथासंख्य नियम प्रवृत्त होता है। सूत्रार्थ महिषी और अषाढ़ प्रातिपदिकों को आद्युदात्त होता है, यदि क्रमशः 'जाया' और 'इष्टका' अर्थ वाच्य हो। भाव यह है कि यदि 'जाया' अर्थ वाच्य रहते 'महिषी' शब्द तथा 'इष्टका' शब्द वाच्य रहते 'आषाढ़' शब्द आद्युदात्त होता है।

उदा.—(1) महिंषी जाया—यहाँ 'जाया' अर्थ वाच्य है। अतः 'महिषी' शब्द आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए।

(2) अषांढ़ा इष्टका—'इष्टका' अर्थ गम्यमान है। अतः 'अषाढ़' शब्द आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए।

○

अथ चतुर्थः पादः

(69) शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण [4.1]

पद.—शकटिशकट्योः 6.2, अक्षरम् 1.1, अक्षरम् 1.1, पर्यायेण 1.3।

अनु.—फिषः उदात्तः इति पदद्वयम् अनुवर्तते।

प्र.—शकटिशकट्योः प्रातिपदिकयोः प्रत्येकम् अक्षरं पर्यायेणोदात्तं भवति।

हिन्दी—'अक्षरमक्षरम्' का अर्थ है—प्रत्येक अक्षर। 'पर्यायेण' का अर्थ है—बारी-बारी। अनुवर्तमान पद 'फिषः' को वचनविपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त 'फिषोः' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—शकटि और शकटी प्रातिपदिकों का प्रत्येक अक्षर पर्यायेण उदात्त होता है।

उदा.—(1) शकटिः—प्रथम अक्षर (अर्थात् शकारस्थ अकार) उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए।

(2) शकटिः—द्वितीय अक्षर (अर्थात् ककारस्थ अकार) उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(3) शकटिः—तृतीय अक्षर (अर्थात् टकारस्थ इकार) उदात्त हुआ।

(4) शकटी—पूर्ववत् प्रथम अक्षर उदात्त हुआ।

(5) शकटी—द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(6) शकटी—तृतीय अक्षर उदात्त हुआ।

(70) गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य [4.2]

पद.—गोष्ठजस्य 6.1, ब्राह्मणनामधेयस्य 6.1.।

अनु.—फिषः उदात्तश्चेति पदद्वयमनुवर्त्तते। अक्षरमक्षरं पर्यायेण इत्यपि अनुवर्त्तन्ते।

प्र.—ब्राह्मणनामधेयस्य गोष्ठजस्य प्रातिपदिकस्याऽक्षरमक्षरं क्रमेणोदात्तं भवति।

हिन्दी—'नामधेय' का अर्थ है—वाचक। यहाँ पूर्ववत् सभी अक्षर क्रमेण उदात्त होते हैं।

सूत्रार्थ—ब्राह्मणवाची गोष्ठज प्रातिपदिक का प्रत्येक अक्षर क्रमेण उदात्त होता है।

उदा.—(1) गोष्ठ॑ज़ो ब्राह्मणः—प्रथम अक्षर (अर्थात् गकारस्थ ओकार) उदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुए।

(2) गो॒ष्ठ॒जो॑ ब्राह्मणः—द्वितीय अक्षर (अर्थात् ठकारस्थ अकार) उदात्त हुआ।

(3) गो॒ष्ठ॒जो ब्राह्मणः—तृतीय अक्षर (अर्थात् जकारस्थ ओकार) उदात्त हुआ।

विशेष—'ब्राह्मणनामधेयस्य' का प्रयोजन है कि **ब्राह्मणवाची** गोष्ठज शब्द का पर्यायेण प्रत्येक अक्षर उदात्त होता है। यथा—

(1) गो॒ष्ठ॒जः पशुः—गोष्ठज शब्द है परन्तु ब्राह्मणवाची नहीं है। यहाँ 'पशु' अर्थ वाच्य है। प्रत्येक अक्षर उदात्त न हुआ। 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (पा. 6.3.139) से अन्तोदात्त हुआ।

(71) पारावतस्योपोत्तमवर्जम् [4.3]

पद.—पारावतस्य 6.1, उपोत्तमवर्जम् 1.1।

अनु.—फिषः उदात्तः इति पदद्वयमनुवर्त्तते। अक्षरमक्षरं पर्यायेण इति पदत्रयमप्यनुवर्त्तते।

प्र.—पारावतस्य प्रातिपदिकस्योपोत्तमं वर्जयित्वा शेषं क्रमेणोदात्तं भवति।

हिन्दी—त्र्यक्षर शब्द का जो अन्तिम अक्षर, उसके पास वाला उपोत्तम कहलाता है। उपोत्तम को छोड़कर सभी अक्षर क्रमेण उदात्त होते हैं।

सूत्रार्थ—पारावत प्रातिपदिक का प्रत्येक अक्षर क्रमेण उदात्त होता है, परन्तु उपोत्तम अक्षर उदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) पारा॑वतः—यहाँ आद्युदात्त हुआ शेष अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) पारावतः—द्वितीय तथा तृतीय अक्षरों को उदात्त प्राप्त हुआ। सूत्र में 'वर्जम्' के द्वारा निषेध कर दिये जाने से उदात्त न हुआ। तब चतुर्थ अक्षर उदात्त हुआ।

(72) धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानाम्-धूजलस्थानाम् [4.4]

पद.—धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानाम् 6.3, अधूजलस्थानाम् 6.3।

अनु.—फिषः उदात्तः इत्यधिक्रियेते। अक्षरमक्षरं पर्यायेणेति पदत्रयमप्यनुवर्त्तते।

प्र.—धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानां चतुर्णां प्रातिपदिकानां धूजलस्थान् चतुरो वर्जयित्वा शिष्टानि अक्षराणि पर्यायेणोदात्तानि भवन्ति।

हिन्दी—अनुवृत्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है। धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानाम्' में इतरेतर योग द्वन्द्व है। इसका 'अधूजलस्थानाम्' पद के साथ अन्वय है। यह नञ्तत्पुरुष है। 'धूजलस्थानाम्' पद में इतरेतरयोग द्वन्द्व समास है। 'धूम्रजानु····पाकानाम्' पद में चार शब्द हैं। इसी प्रकार 'धूजलस्थानाम्' में चार शब्द हैं। यथासंख्य नियम प्रवृत्त होता है। 'धूम्रजानु' के विषय में 'धू' का, 'मुञ्जकेश' के विषय में 'ज' का, 'कालवाल' के विषय में 'ल' का तथा 'स्थालीपाक' के विषय में 'स्थ' को यथोक्त स्वर का प्रतिषेध होता है। धूम्रजानु आदि शब्दों का पर्यायेण प्रत्येक अक्षर उदात्त होता है परन्तु इन शब्दों के अक्षरविशेष को उदात्त स्वर 'अधूजलस्थानाम्' के द्वारा निषेध किया गया है।

सूत्रार्थ—धूम्रजानु, मुञ्जकेश, कालवाल तथा स्थालीपाक इन प्रातिपदिकों का प्रत्येक अक्षर क्रमशः उदात्त होतां है, परन्तु इन शब्दों के क्रमेण धू-ज-ल-स्थ—इन अक्षरों को उदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) धूम्रजानुः—आद्युदात्त स्वर प्राप्त हुआ, परन्तु सूत्र में प्रतिषेध किया गया है। अतः पर्यायेण द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(2) धूम्रजानुंः—पक्ष में तृतीय अक्षर उदात्त हुआ।

(3) धूम्रजानुः—पक्ष में चतुर्थ अक्षर उदात्त हुआ।

(4) मुञ्जकेशः—आद्युदात्त हुआ।

(5) मुञ्जकेशः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त प्राप्त हुआ परन्तु सूत्र के द्वारा निषेध हुआ। तब तृतीय अक्षर उदात्त हुआ।

(6) मुञ्जकेशः—पक्ष में चतुर्थ अक्षर उदात्त हुआ।

(7) कालवालः—आद्युदात्त हुआ।

(8) कालुवालः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त प्राप्त हुआ। सूत्र के द्वारा निषेध हुआ। तृतीय अक्षर उदात्त हुआ। इसी प्रकार चतुर्थ अक्षर उदात्त हुआ।

(9) स्थालीपाकः—आद्युदात्त प्राप्त हुआ। सूत्र के द्वारा निषेध हुआ। द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(10) स्थालीपाकः—पक्ष में तृतीय अक्षर उदात्त हुआ।

(11) स्थालीपाकः—चतुर्थ अक्षर उदात्त हुआ।

(73) कपिकेशहरिकेशयोश्छन्दसि [4.5]

पद.—कपिकेशहरिकेशयोः 6.2, छन्दसि 7.1।

अनु.—फिषः उदात्तश्चेति पदद्वयम् अनुवर्त्तते। अक्षरमक्षरं पर्यायेणेति पदत्रयमप्यनुवर्त्तते।

प्र.—छन्दसि विषये कपिकेशहरिकेशयोः प्रातिपदिकयोः प्रत्येकम् अक्षरम् उदात्तं भवति पर्यायेण।

हिन्दी—'छन्दस्' का अर्थ है—वेद। अनुवर्त्तमान 'फिषः' पद को वचन विपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त 'फिषोः' पद बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—वेद के विषय में कपिकेश तथा हरिकेश—इन प्रातिपदिकों का प्रत्येक अक्षर पर्यायेण उदात्त होता है।

उदा.—(1) कपिकेशः—आद्युदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) कपिकेशः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(3) कपिकेशः—पक्ष में तृतीय अक्षर उदात्त हुआ। शेष पूर्ववत्।

(4) कपिकेशः—पक्ष में चतुर्थ अक्षर उदात्त हुआ।

(5) हरिकेशः—आद्युदात्त हुआ।

(6) हरिकेशः—पक्ष में द्वितीय अक्षर उदात्त हुआ।

(7) हरिकेशः—पक्ष में तृतीय अक्षर उदात्त हुआ।

(8) हरिकेशः—पक्ष में चतुर्थ अक्षर उदात्त हुआ।

विशेष—'छन्दसि' का प्रयोजन है कि वेद के विषय में ही कपिकेश तथा हरिकेश शब्दों को पर्यायेण उदात्त स्वर होता है। यथा—

(1) कपिकेशः—यहाँ वेद का विषय नहीं है, अपितु लोक का विषय है। प्रत्येक अक्षर पर्यायेण उदात्त न हुआ। बहुव्रीहि समास होने से पूर्वपद को प्रकृति-स्वर होता है। 'कपि' शब्द अन्तोदात्त हुआ। शेष सभी अनुदात्त हुए। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(2) हरिकेशः—पूर्ववत् पूर्वपद प्रकृति स्वर (आद्युदात्त) हुआ। 'केचित्तु निरुदकादेराकृतिगणत्वादनयोरन्तोदात्तत्वमाहुः इति शेखरे'।

(74) न्यङ्स्वरौ स्वरितौ [4.6]

पद.—न्यङ्स्वरौ 1.2, स्वरितौ 1.2।

प्र.—न्यङ्स्वरौ प्रातिपदिकौ स्वरितौ स्तः।

हिन्दी—न्यङ् शब्द के निम्नलिखित पर्याय हैं। यथा—वामन, नीच, खर्व तथा ह्रस्व। स्वर् के दो अर्थ हैं—स्वर्ग तथा परलोक।

सूत्रार्थ—न्यङ् तथा स्वर—ये प्रातिपदिक स्वरित स्वर होते हैं।

उदा.—(1) न्यङ्डुत्तानः—न्यङ् स्वरित हुआ।

(2) व्यंचक्षयत् स्वः—पूर्ववत्।

(75) न्यर्बुदव्यल्कशयोरादिः [4.7]

पद.—न्यर्बुदव्यल्कशयोः 6.2, आदिः 1.1

अनु.—फिष इत्यधिक्रियते। 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' (फि. 4.6) इत्यतः 'स्वरितौ' इत्यनुवर्त्तते।

प्र.—न्यर्बुदव्यल्कशयोः प्रातिपदिकयोर् आदिर् उदात्तो भवति।

हिन्दी—अनुवर्त्तमान 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त 'फिषोः' बना लिया जाता है। 'स्वरितौ' को वचनविपरिणाम के द्वारा एकवचनान्त 'स्वरितः' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—न्यर्बुद तथा व्यल्कश प्रातिपदिकों का आदि अक्षर स्वरित होता है।

उदा—(1) न्यंर्बुदः—आदि अक्षर स्वरित हुआ।

(2) व्यंल्कशः—आदि अक्षर स्वरित हुआ।

(76) **तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणामन्तः** [4.8]

पद.—तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणाम् 6.3, अन्तः 1.1।

अनु.—'फिष' इत्यधिक्रियते। 'स्वरितौ' इति पूर्वशास्त्राद् अनुवर्त्तते।

प्र.—तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणां प्रातिपदिकानाम् अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—अनुवर्त्तमान 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है। अनुवृत्त 'स्वरितौ' को वचनविपरिणाम के द्वारा एकवचनान्त 'स्वरितः' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—तिल्य, शिक्य, काश्मर्य, धान्य, कन्या, राजन्य तथा मनुष्य—इन प्रातिपदिकों का अन्त्य अक्षर स्वरित होता है।

उदा.—(1) तिल्यम्—तिलानां भवनं क्षेत्रम्—इस अर्थ में प्रत्यय होकर 'तिल्य' शब्द बनता है। 'यतोऽनावः' (पा. 6.1.213) से प्राप्त आद्युदात्त स्वर को बाधकर अन्त्य अक्षर स्वरित हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(2) शिक्यम्—पूर्ववत्।
(3) काश्मर्यः—पूर्ववत्।
(4) धान्यः—पूर्ववत्।
(5) कन्या—पूर्ववत्।
(6) राजन्यः—पूर्ववत्।
(7) मनुष्यः—पूर्ववत्।

शेखरकार लिखते हैं कि कुछ आचार्य यहाँ 'मर्त्य' शब्द का पाठ करते हैं, जो उचित नहीं है। यथा—'तं त्वा हवन्त मर्त्याः' में 'मर्त्य' शब्द आद्युदात्त उपलब्ध होता है। यह 'यतोऽनावः' से आद्युदात्त है।

(77) **बिल्वभक्ष्यवीर्याणि च्छन्दसि** [4.9]

पद.—बिल्वभक्ष्यवीर्याणि 1.3, छन्दसि 7.1।

अनु.—'फिषः' इत्यधिक्रियते। 'तित्स्यशिक्य····मन्तः' (फि. 4.8) इत्यतः 'अन्तः', 'न्यङ्स्वरौ स्वरितौ' (फि. 4.6) इत्यतः 'स्वरितौ' इति पदद्वयमनुवर्त्तते।

प्र.—बिल्वभक्ष्यवीर्याणां प्रातिपदिकानाम् अन्त्यम् अक्षरं स्वरितं भवति।

हिन्दी—अनुवृत्त षष्ठ्येकवचनान्त 'फिषः' पद को वचनविपरिणाम के द्वारा बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है। इसी प्रकार 'स्वरितौ' को बहुवचनान्त बना लिया जाता है। 'बिल्वभक्ष्यवीर्याणि' को षष्ठ्यन्त बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—वेद के विषय में बिल्व, भक्ष्य तथा वीर्य—इन प्रातिपदिकों को अन्त स्वरित अक्षर स्वर होता है।

उदा.—(1) बिल्वं॑:—अन्त्य अक्षर स्वरित हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।
(2) भक्ष्यं॑म्—पूर्ववत्।
(3) वी॑र्यम्—पूर्ववत्।

'छन्दसि' का प्रयोजन है कि **वेद के विषय** में ही बिल्व आदि शब्दों का अन्त्य अक्षर स्वरित होता है। लोक में बिल्व शब्द स्वरितान्त अथवा अन्तोदात्त (बिल्वः) होता है। भक्ष्य तथा वीर्य शब्द लोक में आद्युदात्त (भक्ष्यम्, वीर्यम्) होते हैं।

(78) त्वत्त्वसमसिमेत्यनुच्चानि [4.10]

पद.—त्वत्त्वसमसिम—लुप्तविभक्त्यन्तरूपम्, इति—अव्य., अनुच्चानि 1.3।

अनु.—फिषः इत्यधिक्रियते।

प्र.—त्वत्त्वसमसिम इत्येतानि सर्वानुदात्तानि। छन्दसीति नाऽनुवर्त्तते।

हिन्दी—'त्वत्त्वसमसिम' यह अविभक्तिक निर्देश है। 'सुपां सुलुक्' से विभक्ति का लुक् हुआ है। अनुवर्त्तमान 'फिषः' पद वचनविपरिणाम तथा विभक्ति-विपरिणाम के द्वारा प्रथमा बहुवचनान्त बना लिया जाता है। 'अनुच्च' का अर्थ है—अनुदात्त।

सूत्रार्थ—त्वत्, त्व, सम और सिम—ये प्रातिपदिक सर्वानुदात्त होते हैं अर्थात् इनके सभी अक्षर अनुदात्त होते हैं। युष्मद् की पञ्चमी के एकवचन में 'त्वत्' रूप बनता है। यहाँ उसी का ग्रहण है। अन्यवाची 'त्व' का यहाँ ग्रहण है। सूत्रस्थ

'सम' शब्द के दो अर्थ हैं—तुल्य और सर्व। इसी प्रकार 'सिम' शब्द यहाँ सर्व पर्याय है।

उदा.—(1) स्तरीरुत्वद् भवति (ऋं. 7.101.3.)—'त्वत्' अनुदात्त हुआ।

(2) उत त्वः पश्यन् (ऋ. 1.71.4)—'त्व' अनुदात्त हुआ।

(3) नभन्तामन्यके समे—'सम' सर्वानुदात्त हुआ।

(4) सिमस्मै—'सिम' सर्वानुदात्त हुआ।

(79) सिमस्याऽऽथर्वणेऽन्त उदात्तः [4.11]

पद.—सिमस्य 6.1, आथर्वणे 7.1, अन्तः 1.1, उदात्तः 1.1।

अनु.—'फिषः' इत्यधिक्रियते।

प्र.—अथर्ववेदविषये सिमस्य प्रातिपदिकस्य अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—'आथर्वण' का अर्थ है—अथर्व मन्त्र अथवा अथर्ववेद से सम्बन्धित।

सूत्रार्थ—अथर्ववेद के विषय में 'सिम' प्रातिपदिक का अन्त्य अक्षर उदात्त होता है।

उदा.—(1) सिमस्मै (अथ. 20.132.1)—अन्त्य अक्षर (मकारस्थ अकार) उदात्त हुआ। शेष (सकारस्थ इकार) अनुदात्त हुआ।

सूत्र में 'आथर्वणे' पद प्रायिक है। अतः अन्यत्र (अर्थात् अथर्ववेद से अतिरिक्त) भी 'सिम' का अन्त्य अक्षर उदात्त प्राप्त होता है। यथा—

(1) सिमस्मै (ऋ. 1.115.4)—यहाँ अन्त्य अक्षर उदात्त हुआ।

(80) निपाता आद्युदात्ताः [4.12]

पद.—निपाताः 1.3, आद्युदात्ताः 1.3

अनु.—फिषः इत्यधिक्रियते।

प्र.—निपाता आद्युदात्ता भवन्ति।

हिन्दी—अनुवर्त्तमान 'फिषः' (षष्ठ्येकवचनान्त) पद को वचनविपरिणाम तथा विभक्तिविपरिणाम के द्वारा प्रथमा-बहुवचनान्त बना लिया जाता है। आचार्य

पाणिनि ने 'प्राग्रीश्वरान्निपाताः' (पा. 1.4.56) के द्वारा कुछ शब्दों की निपात सञ्ज्ञा कही है।

सूत्रार्थ—निपातसञ्ज्ञक प्रातिपदिक आद्युदात्त होते हैं।

उदा.—(1) उरीं—आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।
(2) उरंरी—पूर्ववत्।
(3) साक्षात्—पूर्ववत्।
(4) स्वाहा—पूर्ववत्।

यद्यपि शुक्ल एक निपात है, तथापि च्वि के चित् होने से च्वि प्रत्ययान्त (शुक्लीकरोति) शब्द अन्तोदात्त हुआ।

(81) उपसर्गाश्चाऽभिवर्जम् [4.13]

पद.—उपसर्गाः 1.3, च—अव्य, अभिवर्जम् 1.1।

अनु.—'फिषः' इत्यधिक्रियते। 'निपाता आद्युदात्ताः' (फि. 4.12) इत्यतः 'आद्युदात्ताः' इति पदम् अनुवर्त्तते।

प्र.—अभिशब्दं वर्जयित्वोपसर्गसञ्ज्ञकानि प्रातिपदिकान्याद्युदात्तानि भवन्ति।

हिन्दी—'उपसर्गाः क्रियायोगे' (पा. 1.4.59) के द्वारा आचार्य पाणिनि ने क्रिया के योग में 'प्र' आदि शब्दों की उपसर्ग सञ्ज्ञा कही है। 'प्र' आदि शब्द बाईस है। 'अभिवर्जम्' पद के द्वारा 'अभि' के यथोक्त स्वर का निषेध किया है।

सूत्रार्थ—उपसर्ग सञ्ज्ञक (प्र आदि) प्रातिपदिक आद्युदात्त होते हैं परन्तु 'अभि' शब्द नहीं होता है। भाव यह है कि उपसर्गसञ्ज्ञक प्र आदि (इक्कीस) शब्द आद्युदात्त होते हैं परन्तु उपसर्गसञ्ज्ञक 'अभि' शब्द आद्युदात्त नहीं होता है।

उदा.—(1) प्र, (2) परा, (3) अप, (4) सम्, (5) अनु, (6) अव, (7) निस्, (8) निर्, (9) दुस्, (10) दुर्, (11) वि, (12) आङ्, (13) नि, (14) अधि, (15) अपि, (16) अति, (17) सु, (18) उद्, (19) प्रति, (20) परि, (21) उप (22) अभि।

'उपसर्गाः' का प्रयोजन है कि उपसर्गसञ्ज्ञक 'प्र' आदि शब्द ही आद्युदात्त होते हैं। जहाँ 'प्र' आदि शब्दों की उपसर्ग सञ्ज्ञा न होगी, वहाँ वे आद्युदात्त नहीं होते हैं।

विशेष—शेखरकार लिखते हैं कि कुछ व्याख्याकार प्रकृत सूत्र को व्यर्थ

मानते हैं। यतो हि—उपसर्ग निपात होते हैं। अतः 'निपाता आद्युदात्ताः' से उपसर्ग भी आद्युदात्त सिद्ध हैं। यहाँ शङ्का है कि कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञक शब्द उपसर्ग नहीं होते हैं। अतः उनके लिये प्रकृत सूत्र की आवश्यकता है। (समा.) कर्मप्रवचनीय भी आद्युदात्त होते हैं। अतः उन्हें उपसर्गों से पृथक् दर्शाने की आवश्यकता नहीं है। अतः प्रकृत सूत्र व्यर्थ है।

पुनः शङ्का है कि प्रकृत सूत्र का खण्डन कर देने से 'अभि' उपसर्ग की अन्तोदात्तता सिद्ध कैसे होगी ? (समा.) इस दशा में 'अभि' उपसर्ग का 'एवादि' गण में पाठ[1] कर देने से 'एवादीनामन्तः' से अन्तोदात्तता निर्बाध सिद्ध हो जाती है।

कुछ विद्वान् केवल उपसर्गसञ्ज्ञक 'अभि' शब्द की आद्युदात्तता का निषेध मानते हैं। कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञक अभि शब्द के निपात होने से वह आद्युदात्त ही रहता है। उनके मत में प्रकृत सूत्र आवश्यक है।

(82) एवादीनामन्तः [4.14]

पद.—एवादीनाम् 6.3, अन्तः 1.1।

अनु.—फिषः इत्यधिक्रियते। उदात्तश्चेति अत्राऽनुवर्त्तते।

प्र.—एवादीनां प्रातिपदिकानाम् अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—वचनविपरिणाम के द्वारा 'फिषः' को बहुवचनान्त 'फिषाम्' बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—एव आदि प्रातिपदिकों का अन्त्य अक्षर उदात्त होता है।

आचार्य पाणिनि ने 'चाऽऽदयोऽसत्त्वे' (पा.) सूत्र का पाठ किया है। यहाँ चादिगण में 'एव' आदि शब्दों का पाठ है। यहाँ उन शब्दों का ही ग्रहण है।

उदा.—(1) एव—अन्तोदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ।

(2) एवम्—पूर्ववत्।

(3) नूनम्—पूर्ववत्।

कुछ आचार्य प्रकृत के स्थान पर 'एवमादीनामन्तः' ऐसा पाठ स्वीकार करते हैं।

---

1. 'मानो मर्त्ता अभिद्रुहन्' इस मन्त्र के भाष्य में भाष्यकार ने 'अभि' शब्द की अन्तोदात्तता 'एवादीनामन्तः' सूत्र से कही है। अतः भाष्यवचन से पुष्टि होती है कि 'अभि' शब्द एवादिगण में पठित होना चाहिये।

निम्नलिखित स्थलों पर 'अह' तथा 'शश्वत्' शब्द आद्युदात्त प्राप्त होते हैं। यथा—

आदह॑ स्वधामनु।
क्वाह मित्रावरुणा शश्वदिन्द्र॑....।

(समा.) एवादिगण में अह और शश्वत् शब्दों का आद्युदात्त पाठ है अथवा इन शब्दों के निपात होने से 'निपाता आद्युदात्ताः' से ये आद्युदात्त हैं।

(83) वावादीनामुभावुदात्तौ [4.15]

पद.—वावादीनाम् 6.3, उभौ 1.2, उदात्तौ 1.2.

अनु.—'फिषः' इत्यधिक्रियते।

प्र.—वावादीनां प्रातिपदिकानाम् उभावुदात्तौ भवतः।

हिन्दी—'उभौ' का अर्थ है—दोनों अक्षर। पूर्वशास्त्र से 'उदात्तः' पद की अनुवृत्ति सुलभ रहने पर भी 'उदात्तौ' पद का ग्रहण स्पष्टता के लिये है।

सूत्रार्थ—'वाव' आदि प्रातिपदिकों के दोनों अक्षर उदात्त होते हैं।

उदा.—(1) वाव—दोनों अक्षर उदात्त हैं।

विशेष—सूत्र में 'उभौ' पद का ग्रहण 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (पा. 6.1.158) के बाध के लिये है।

(84) चाऽऽदयोऽनुदात्ताः [4.16]

पद.—चाऽऽदयः 1.3, अनुदात्ताः 1.3।

अनु.—फिषः इत्यधिक्रियते।

प्र.—चाऽऽदयः प्रातिपदिकान्यनुदात्तानि भवन्ति। चादयो निपाताः सन्ति।

हिन्दी—'चाऽऽदयोऽसत्त्वे' के अन्तर्गत आचार्य ने चादिगण का पाठ किया है। यहाँ इन्हीं शब्दों का ग्रहण हैं। अनुवर्त्तमान 'फिषः' (षष्ठ्येकवचनान्त) को वचनविपरिणाम तथा विभक्तिविपरिणाम के द्वारा प्रथमा बहुवचनान्त बना लिया जाता है।

सूत्रार्थ—'च' आदि प्रातिपदिक अनुदात्त होते हैं।

उदा.—(1) चु—अनुदात्त हुआ।
(2) वा—पूर्ववत्।
(3) हु—पूर्ववत्।

(4) अह्—पूर्ववत्।

(85) यथेति पादान्ते [4.17]

पद.—यथा—अव्य., इति—अव्य. पादान्ते 7.1।

अनु.—फिषः, अनुदात्ताः इति पदद्वयमनुवर्त्तते।

प्र.—पादान्ते वर्त्तमानं यथेति प्रातिपदिकम् अनुदात्तं भवति।

हिन्दी—'पादान्त' का अर्थ है—पाद का अन्त। वैदिक मन्त्र छन्दोबद्ध होते हैं, परन्तु सभी मन्त्रों में पाद की व्यवस्था नहीं होती है। चूँकि ऋग्वेद में ही अर्थ के अनुकूल पादों की व्यवस्था होती है,[1] अतः अष्टाध्यायी के व्याख्याकारों ने 'पाद' शब्द के द्वारा 'ऋक्पाद' का ही ग्रहण किया है[2]। यहाँ भी पाद शब्द के द्वारा ऋक्पाद ही गृहीत होता है।

सूत्रार्थ—पाद के अन्त में वर्त्तमान **'यथा'** प्रातिपदिक अनुदात्त होता है।

उदा.—(1) तं नेमिमृभवो यथा (ऋ. 8.75.5)—ऋक्पाद के अन्त में **'यथा'** है। अनुदात्त हुआ।

विशेष—'पादान्ते' का प्रयोजन है कि ऋक्पाद के **अन्त में** स्थित 'यथा' शब्द अनुदात्त होता है। यथा—

(1) यथा नो अदितिः करत्...(ऋ. 1.43.2)—पादान्त में नहीं है। अतः अनुदात्त न हुआ, आद्युदात्त हुआ। शेष अनुदात्त हुआ। उदात्त से उत्तर अनुदात्त स्वरित हुआ।

(86) प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्यान्त उदात्तः [4.18]

पद.—प्रकारादिद्विरुक्तौ 7.1, परस्य 6.1, अन्तः 1.1, उदात्तः 1.1।

अनु.—फिषः इत्यधिक्रियते।

---

1. द्र.—यत्राऽर्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक्। (जै.द.2.3)

2. पादशब्देन च ऋक्पादस्यैव ग्रहणमिष्यते। (काशि. 6.1.115) ऋक्षिवति प्रकृतत्वाद् ऋक्पाद एवेह गृह्यते। (काशि. 8.3.9) पादशब्द ऋक्पादं बोधयति। (काशि. (न्या.)—3.2.66,7.1.57 तथा—काशि. (पदम.) 7.1.57)
ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृत्या स्यात्। (वै.सि.कौ. वै.प्र. सू. 3578, पा.6.1.115)

प्र.—'प्रकारे गुणवचन.' इत्यादि द्वित्वे यत्परं तस्य अन्त उदात्तो भवति।

हिन्दी—आचार्य पाणिनि ने 'प्रकारे गुणवचनस्य' (पा.8.1.12) के द्वारा प्रकार अर्थ में गुणवचन को जो द्वित्व हुआ उसे कर्मधारयवद् कहा है। प्रकृत में उसी का ग्रहण है। द्वित्व में दो शब्द होते हैं। एक पूर्व होता है तथा दूसरा पर होता है। प्रकृत सूत्र के द्वारा 'पर' शब्द को अन्तोदात्त कहा है।

सूत्रार्थ—प्रकारादि द्विरुक्ति होने पर जो 'पर' शब्द है, उसे अन्तोदात्त होता है।

'प्रकार' का अर्थ है—सादृश्य। यह द्विरुक्ति सादृश्य अर्थ में होती है।

उदा.—(1) पटुपटुः—यहाँ 'पर' शब्द अन्तोदात्त हुआ।

(2) मृदुमृदु—पूर्ववत्।

(3)—पण्डितपण्डितः—पूर्ववत्।

(87) शेषं सर्वमनुदात्तम् [4.19]

पद.—शेषम् 1.1, सर्वम् 1.1, अनुदात्तम् 1.1।

अनु.—फिषः इत्यधिक्रियते।

प्र.—प्रकारादिद्विरुक्तादन्यद् यद द्विरुक्तं तत्र सर्वम् अनुदात्तं भवति।

हिन्दी—अनुक्तः शेषः अर्थात् जो नहीं कहा गया है, वह 'शेष' कहलाता है। प्रकार अर्थ में जो द्वित्व, उसका 'पर' शब्द अन्तोदात्त होता है—यह पूर्वशास्त्र से प्राप्त होता है। अतः यहाँ प्रकार अर्थ से अन्य अर्थ में जो द्वित्व, उसका ग्रहण 'शेष' शब्द के द्वारा होता है।

सूत्रार्थ—शेष अर्थों में जो द्विरुक्ति, उसे सर्वानुदात्त होता है।

उदा.—(1) पचतिपचति—'नित्यवीप्सयोः' (पा. 8.1.4) से द्विरुक्ति है। अतः सर्वानुदात्त हुआ।

(2) जल्पतिजल्पति—पूर्ववत्।

(3) ग्रामो ग्रामो रमणीयः—पूर्ववत्।

इति सोमलेखाविरचितप्रकाशाऽऽख्यसंस्कृतहिन्दीव्याख्याद्वयसहित
आचार्यशान्तनुप्रणीतफिट्सूत्रपाठे चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्तश्चाऽयं व्याख्यायुतो ग्रन्थः।

○

आचार्य-शन्तनुप्रणीतः

फिट्सूत्रपाठः

प्रथमः पादः

1. फिषोऽन्त उदात्तः।
2. पाटलापालङ्काम्बासागरार्थानाम्।
3. गेहार्थानामस्त्रियाम्।
4. गुदस्य च।
5. ध्यपूर्वस्य स्त्रीविषयस्य।
6. खान्तस्याऽश्मादेः।
7. बहिष्ठवत्सरतिशत्थान्तानाम्।
8. दक्षिणस्य साधौ।
9. स्वाङ्गाख्यायामादिर्वा।
10. छन्दसि च।
11. कृष्णस्यामृगाख्या चेत्।
12. वा नामधेयस्य।
13. शुक्लगौरयोरादिः।
14. अङ्गुष्ठोदकबकवशानां छन्दस्यन्तः।
15. पृष्ठस्य च।
16. अर्जुनस्य तृणाख्या चेत्।
17. अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्।
18. आशाया अदिगाख्या चेत्।
19. नक्षत्राणामाब्विषयाणाम्।
20. न कुपूर्वस्य कृत्तिकाख्या चेत्।
21. घृतादीनां च।
22. ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि।
23. बिल्वतिष्ययोः स्वरितो वा।

द्वितीयः पादः

1. अथादिः प्राक् शकटेः।
2. ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविषयस्य।
3. नब्विषयस्याऽनिसन्तस्य।
4. तृणधान्यानां च द्व्यषाम्।
5. व्रः सङ्ख्यायाः।
6. स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्।
7. प्राणिनां कुपूर्वम्।
8. खय्युवर्णं कृत्रिमाख्या चेत्।
9. उनर्वन्नन्तानाम्।
10. वर्णानां तणतनितन्तानाम्।
11. ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वमनृत् ताच्छील्ये।
12. अक्षस्यादेवनस्य।
13. अर्धस्यासमद्योतने।
14. पीतद्रवर्थानाम्।
15. ग्रामादीनां च।
16. लुबन्तस्योपमेयनामधेयस्य।
17. न वृक्षपर्वतविशेषव्याघ्र-सिंहमहिषाणाम्।
18. राजविशेषस्य यमन्वा चेत्।
19. लघावन्ते द्वयोश्च बह्वचो गुरुः।
20. स्त्रीविषयवर्णाक्षुपूर्वाणाम्।
21. शकुनीनां च लघु पूर्वम्।
22. नर्तुप्राण्याख्यायाम्।
23. धान्यानां च वृद्धक्षान्तानाम्।

24. जनपदशब्दानामषन्तानाम् ।
25. हयादीनामसंयुक्तलान्तानामन्तः पूर्वं वा ।
26. इगन्तानां च द्व्यषाम् ।

तृतीयः पादः

1. अथ द्वितीयं प्रागीषात् ।
2. ञ्यचां प्राङ् मकरात् ।
3. स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम् ।
4. मादीनां च ।
5. शादीनां शाकानाम् ।
6. पान्तानां गुर्वादीनाम् ।
7. युतान्यण्यन्तानाम् ।
8. मकरवरूढपारेवतवितस्तेक्ष्वार्जिद्राक्षाकलोमाकाष्ठापेष्ठाकाशीनामादिर्वा ।
9. छन्दसि च ।
10. कर्दमादीनां च ।
11. सुगन्धितेजनस्य ते वा ।
12. नपः फलान्तानाम् ।
13. यान्तस्याऽन्त्यात् पूर्वम् ।
14. थान्तस्य च नालघुनी ।
15. शिशुमारोदुम्बरबलीवर्दोष्ट्रारपुरूरवसाम् ।
16. साङ्काश्यकाम्पिल्यनासिक्यदावाघाटानाम् ।
17. ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा ।
18. उशीरदासेरकपालपलालशैवालश्यामाकशारीरशरावहृदयहिरण्याऽरण्याऽपत्यदेवराणाम् ।
19. महिष्यषाढयोर्जायेष्टकाख्या चेत् ।

चतुर्थः पादः

1. शकटिशकट्योरक्षरमक्षरं पर्यायेण ।
2. गोष्ठजस्य ब्राह्मणनामधेयस्य ।
3. पारावतस्योपोत्तमवर्जम् ।
4. धूम्रजानुमुञ्जकेशकालवालस्थालीपाकानामधूजलस्थानाम् ।
5. कपिकेशहरिकेशयोश्छन्दसि ।
6. न्यङ्स्वरौ स्वरितौ ।
7. न्यर्बुदव्यल्कशयोरादिः ।
8. तिल्यशिक्यकाश्मर्यधान्यकन्याराजन्यमनुष्याणामन्तः ।
9. बिल्वभक्ष्यवीर्याणि च्छन्दसि ।
10. त्वत्त्वसमसिमेत्यनुच्चानि ।
11. सिमस्याऽऽथर्वणेऽन्त उदात्तः ।
12. निपाता आद्युदात्ताः ।
13. उपसर्गाश्चाऽभिवर्जम् ।
14. एवादीनामन्तः ।
15. वावादीनामुभावुदात्तौ ।
16. चादयोऽनुदात्ताः ।
17. यथेति पादान्ते ।
18. प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्याऽन्त उदात्तः ।
19. शेषं सर्वमनुदात्तम् ।

इत्याचार्यशन्तनुप्रणीतः फिट्सूत्रपाठः ।

○

फिट्सूत्राणामकाराद्यनुक्रमणिका

[अत्र सूत्रसङ्ख्या प्रदर्शिता]

सू.	सूत्राणि
35	अक्षरस्यादेवनस्य
14	अङ्गुष्ठोदकवककवशा.
50	अथ द्वितीयं प्रागीषात्
24	अथादि: प्राक्शकटे:
16	अर्जुनस्य तृणाख्या.
36	अर्धस्यासमद्योतने.
17	अर्यस्य स्वाम्याख्या.
18	आशाया अदिगाख्या
49	इगन्तानां च द्वयषाम्
66	ईषान्तस्य हयादेरादि.
32	उनर्वन्नन्तानाम्
81	उपसर्गाश्चाभिवर्जम्
67	उशीरदासेरकपाल.
82	एवादीनामन्त:
73	कपिकेशहरिकेशयो.
59	कर्दमादीनां च
11	कृष्णस्यामृगाख्या.
31	खय्युवर्णकृत्रिमाख्या.
6	खान्तस्याश्मादे:
4	गुदस्य च
3	गेहार्थानामस्त्रियाम्
70	गोष्ठजस्य ब्राह्मणनाम.
38	ग्रामादीनां च
21	घृतादीनां च
84	चादयोऽनुदात्ता:
58	छन्दसि च
10	छन्दसि च
47	जनपदशब्दानामष.
22	ज्येष्ठकनिष्ठयोर्वयसि
76	तिल्यशिक्यकाश्मर्य.
27	तृणधान्यानां च द्व्यषाम्
51	त्र्यचां प्राङ्मकरात्
78	त्वत्वसमसिमेत्यनु.
63	थान्तस्य च नालघुनी
8	दक्षिणस्य साधौ
46	धान्यानां च वृद्धक्षा.
72	धूम्रजानुमुञ्जकेश.
5	ध्यपूर्वस्य स्त्रीविष.
20	न कुपूर्वस्य कृत्तिका.
19	नक्षत्राणामाब्विषया.
61	नप: फलान्तानाम्
26	नव्विषयस्यानिस.
80	निपाता आद्युदात्ता:
45	नर्तुप्राण्याख्यायाम्
40	न वृक्षपर्वतविशेष.
74	न्यङ्स्वरौ स्वरितौ
75	न्यर्बुदव्यल्कशयोरा.
28	ब्र: संख्याया:
2	पाटलापालङ्काम्बा.
55	पान्तानां गुर्वादीनां
71	पारावतस्योपोत्तम.
37	पीतद्रुवर्थानाम्
15	पृष्ठस्य च
86	प्रकारादिद्विरुक्तौ
30	प्राणिनां कुपूर्वम्
1	फिषोऽन्त उदात्त:
23	बिल्वतिष्ययो: स्वरि.
77	बिल्वभक्ष्यवीर्याणि.
57	मकरवरूढपारे.
68	महिष्यषाढयोर्जाये.
53	मादीनां च
85	यथेति पादान्ते
62	यान्तस्यान्त्यात्पूर्वम्
56	युतान्यण्यन्तानाम्
41	राजविशेषस्य यम.
42	लघावन्ते द्वयोश्च.
39	लुबन्तस्योपमेयना.
33	वर्णानां तणतिनित.
12	वा नामधेयस्य.
83	वावादीनामुभावु.
69	शकटिशकट्योरक्षर.
44	शकुनीनां च लघुपूर्वम्
54	शादीनां शाकानाम्
64	शिशुमारोदुम्बरबली.
13	शुक्रगौरयोरादि:

सू.	सूत्राणि
87	शेषं सर्वमनुदात्तम्
65	साङ्काश्यकाम्पिल्य.
79	सिमस्याथर्वणेऽन्त.
60	सुगन्धितेजनस्य.
43	स्त्रीविषयवर्णाक्षु.
29	स्वाङ्गशिटामदन्तानाम्
9	स्वाङ्गाख्यायामादि.
52	स्वाङ्गानामकुर्वादीनाम्
48	हयादीनामसंयुक्त.
7	हिष्ठवत्सरतिशत्था.
25	ह्रस्वान्तस्य स्त्रीविष.
34	ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वम्.

फिट्सूत्रस्थोदाहरणानामकाराद्यनुक्रमेणाऽनुक्रमणिका

अकूपार	1.2	अर्णवः	1.2	इक्षुः	3.8
अक्षैर्मा दीव्यः	2.12	अर्धं पिप्पल्याः	2.3	इभ्यां	1.5
अगारम्	1.3	अर्धो ग्रामस्य	2.13	उखा	1.6
अग्निर्माणवकः	2.16	अर्यो वैश्यः	1.17	उच्चैः	1.1
अङ्गुष्ठः	1.14	अलिवल्लभा	1.2	उत त्वः पश्यन्	4.10
अति	4.13	अव	4.13	उद्	4.13
अधि	4.13	अशीतिः	1.7	उदकम्	3.10
अनु	4.13	अश्विनी	1.19	उदकम्	2.17,3.10
अनुराधा	1.19	अषाढा इष्टका	3.19	उदुकम्	1.14
अनूपम्	3.6	अहु	4.16	उदुधिः	1.2
अन्तर्धा	1.5	आङ्	4.13	उदुन्वान्	1.2
अप	4.13	आङ्गः	2.18	उदुवसितम्	1.3
अपत्यम्	3.18	आतपः	3.6	उदुम्बरः	3.15
अपानम्	1.4	आम्रः	2.24	उदुम्बरः	3.15
अपाम्पतिः	1.2	आरग्वधः	1.2	उप	4.13
अपालङ्कः	1.2	आरेवतः	1.2	उमां	3.8
अपि	4.13	आर्जिः	3.8	उमा	3.8
अब्धिः	1.2	आर्जिः	3.8	उरंरी	4.12
अभि	4.13	आर्यिका	1.20	उरीं	4.12
अमोघा	1.2	आलयः	1.3	उशीरम्	3.18
अम्बरीषम्	3.17	आलोकः	2.24	उष्ट्रारः	3.15
अम्बा	1.2	आशा	1.18	उष्ट्रारः	3.15
अयुतम्	3.7	(इन्द्र) आशाभ्यस्परिं	1.18	एकलः	2.25
अरण्यम्	3.18	आश्लेषा	1.19	एतः	2.10
अर्जुनं तृणम्	1.16	इक्षुः	3.8	एव	4.14
अर्जुनो नाम वृक्षः	1.16			एवम्	4.14

ओष्ठौ	2.6	काश्मर्यः	4.8	खञ्जरीटः	2.22
कनिष्ठः	1.22	काश्यपः	3.10	खंट्वा	1.19
कनिष्ठः	1.22	काष्ठा	3.8	गवयः	3.13
कन्दुकः	2.8	काष्ठा	3.8	गान्धारिः	3.10
कन्या	4.8	किसलयम्	2.19	गान्धारिः	3.10
कपालः	3.18	कुक्कुटः	2.21	गुदम्	1.4
कपिः	2.11	कुटी	1.3	गुदा	1.4
कपिकेशः	4.5	कुतपः	3.6	गृहम्	1.3
कपिकेशः	4.5	कुबेराक्षी	1.2	गृहाः	1.3
कपिकेशः	4.5	कुलटा	3.10	गेहम्	1.3
कपिकेशः	4.5	कुलटा	3.10	गोधूमाः	2.4,24
कपिकेशः	4.5	कुलायः	3.13	गोष्ठजः पशुः	4.2
कपोलः	3.3	कुशः	2.4	गोष्ठजो ब्राह्मणः	4.2
कर्णौ	2.6	कृकलासः	2.22	गोष्ठजौ ब्राह्मणः	4.2
कर्दमः	3.10	कृतमालः	1.2	गोष्ठजो ब्राह्मणः	4.2
कर्दमः	3.10	कृत्तिका नक्षत्रम्	1.20	गौरः	1.13
कर्दमः	3.10	कृत्तिका माणविका	1.20	(सरो) गौरो यथा	1.13
कला	3.8	कृषिः	2.26	ग्रामः	2.15
कला	3.8	कृष्णवृन्ता	1.2	ग्रामो ग्रामो रमणीयः	4.19
कल्याणम्	2.19	कृष्णानां व्रीहीणाम्	1.11	घटः	2.6
कल्याणम्	2.19	कृष्णो नौनाव वृषभः	1.11	घृतम्	1.21
काकः	2.7	कृष्णौ रात्र्यै	1.11	च	4.16
काम्पिल्यः	3.16	केकयः	2.24	चञ्चा	2.16
काम्पिल्यः	3.16	कोलाहलः	2.19	चटकः	2.7
कालवालः	4.4	कोलाहलः	2.19	चणकाः	2.24
कालवालः	4.4	कोसलाः	2.25	चतुरङ्गुलः	1.2
कालस्थाली	1.2	कोसलाः	2.25	चतुष्कपालः	2.5
काशः	2.4	क्षत्रियाः	1.5	चत्वारः	2.4
काशिः	3.8	खगः	2.7	छाया	1.5
काशि	3.8				

जुड़:	2.11	दुस्	4.13	नृशंसः	2.11
जुलुम्बिः	1.2	देवः	2.19	न्यङ्ङुत्तानः	4.6
जुल्पति जुल्पति	4.19	देवरः	3.18	न्यर्बुदः	4.7
जाया	1.5	द्राक्षां	3.8	पचति पचति	4.19
ज्येष्ठः	1.22	द्राक्षा	3.8	पञ्च	2.5
ज्येष्ठः	1.22	धनिष्ठा	1.19	पञ्चालाः	2.25
ज्येष्ठा	1.19	धमनिः	3.7	पञ्चालाः	2.25
तनुः	2.2	धान्यः	4.8	पञ्चाशत्	1.7
तरक्षुः	2.20	धृष्नजानुः	4.4	पटुपटुः	4.18
तालः	2.17	धृष्नुजानुः	4.4	पण्डितपण्डितः	4.18
तित्तिरः	2.21	धृष्नुजानुः	4.4	पत्स्यम्	1.3
तिलः	2.4	नखम्	1.6	परा	4.13
तिल्यम्	4.8	नदी	2.2	परि	4.13
तिष्यः	1.23	नभन्तामन्यके समे	4.10	परिवत्सरः	1.7
तिष्यः	1.23	(तस्य) नाक्षः	2.12	पर्वतः	2.17
तृणकम्	2.11	नाना	3.14	पललम्	2.25
दक्षिणः	1.10	नासा	3.14	पललम्	2.25
दक्षिणः	1.10	नासिक्यः	3.16	पलाल	3.18
(वीणायां) दक्षिणः	1.8,9	नासिक्यः	3.16	पाकला	1.2
दक्षिणः करः	1.8	नि	4.13	पाटला	3.6
दक्षिणो बाहुः	1.9	निकायः	1.3	पाटला	1.2
दक्षिणो बाहुः	1.9	निकाय्यः	1.3	पाटलिः	1.2
दरद्	2.24	निकेतनम्	1.3	पादपः	3.6
दार्वाघाटः	3.16	निर्	4.13	पारावतः	4.3
दार्वाघाटः	3.16	निलयः	1.3	पारावतः	4.3
दासीफलो वृक्षः	3.12	निशान्तम्	1.3	पारावारः	1.2
दासेरः	3.18	निस्	4.13	पारेवतः	3.8
दिवा	3.14	नीचैः	1.1	पारेवतः	3.8
दुःखम्	1.6	नीपम्	3.6	पिब	1.13
दुर्	4.13	नूनम्	4.14	पीतद्रुः	2.14

पीवानं मेषम्	2.9	मञ्जूषा	3.17	यामः	2.15
पूतिकाष्ठम्	2.14	मधुदूती	1.2	रत्नाकरः	1.2
पुरूरवाः	3.15	मधुमासः	2.3	रसना	3.3
पृश्निः	2.10	मधोस्तृप्ता इवासते	2.3	राजन्यः	4.8
पृष्ठं यज्ञेन	1.15	मनीषा	3.18	राजमाषः	2.23
पृष्ठम्	1.15	मनीषा	3.17	राजवृक्षः	1.2
पेष्ठा	3.8	मनीषा	3.17	राजादनफलम्	3.12
पेष्ठा	3.8	मनुष्यः	4.8	राजादनफलम्	3.12
प्र	4.13	मन्दिरम्	1.3	लघु	2.2
प्रति	4.13	मयूरः	2.7	ललाटम्	3.3
प्रभृथः	1.7	मरुः	2.2	लाङ्गलीषा	3.17
प्राज्ञम्	2.11	मलयः	3.4,13	लाङ्गलीषा	3.17
फलेरुहा	1.2	मल्लः	2.25	वत्स्यम्	1.3
बंहिष्ठ	1.7	मल्लिका	2.20	वदनम्	3.3,4
बकः	1.14	महिषः	2.17	वधूः	2.11
बधिरः	2.11	महिषी जाया	3.19	वनम्	2.3
बलिः	2.2	महेन्द्रः	3.4	वरणाः	2.16
बलीवर्दः	3.15	माता	1.2	वरुणः	2.9
बलीवर्दः	3.15	माया	1.5	वरूढः	3.8
बहुः	2.2	माषः	2.4	वरूढः	3.8
बहुला	1.20	मुखम्	1.6	वशा	1.14
बहुलिका	1.20	मुञ्जकेशः	4.4	वसन्तः	2.22
बाहू	2.6	मुञ्जकेशः	4.4	वा	4.16
बाह्यम्	1.5	मुञ्जकेशः	4.4	वातप्रमी	2.19
बिल्वः	1.23	मुधा	3.14	वाव	4.15
बिल्वः	1.23	मुनिः	2.11	वासः	1.3
बिल्वः	4.9	मृदुमृदु	4.18	वि	4.13
भक्ष्यम्	4.9	मेरुः	2.17	वितस्ता	3.8
भुवनम्	1.3	(तं नेमि)···यथा	4.17	वितस्ता	3.8
मकरः	3.8,3.9	यथा···करत्	4.17	विपणिः	3.7
मकरः	3.8,3.9,3.4	यादः पतिः .	1.2	विश्वः	2.6

विहगः	2.7	शैवालः	3.18	सु	4.13
वीर्यम्	4.9	श्यामाकः	2.23	सुखम्	1.6
वृकः	2.7	श्यामाकः	3.18	सुगन्धितेजनः	3.11
वृक्षः	2.17	श्येनी	2.20	सुगन्धितेजनः	3.11
वेश्म	1.3	श्रविष्ठा	1.19	सुगन्धितेजनः	3.11
व्यचक्षयत् स्वः	4.6	संवत्सरः	1.7	सुधा	3.14
व्यल्कशः	4.7	सदनम्	1.3	सुरूपा	1.2
व्याघ्रः	2.17	सद्म	1.3	सुवर्णकः	1.2
व्याधिघातः	1.2	सनाथा	3.14	सोमः	2.15
शकटिः	4.1	सनाथा सभा	3.14	स्तरीरुत्वत्	4.10
शकटिः	4.1	सप्त	2.5	स्थालीपाकः	4.4
शकुटिः	4.1	सप्ततिः	1.7	स्थालीपाकः	4.4
शकटी	4.1	सफलम्	3.12	स्थालीपाकः	4.4
शकटी	4.1	सफालम्	3.12	स्वसारं त्वा कृणवै	2.9
शकुटी	4.1	सभा	1.3	स्वाहा	4.12
शतपुष्पा	3.5	सम्	4.13	हु	4.16
शयाकः	1.2	समुद्रः	1.2	हरिकेशः	4.5
शरावः	3.18	सरलः	2.14	हरिकेशः	4.5
शललम्	2.25	सरस्वान्	1.2	हरिकेशः	4.5
शललम्	2.25	सरित्पतिः	1.2	हरिकेशः	4.5
शारीरः	3.18	सर्पिः	2.3	हरिणः	2.10
शाला	1.3	सर्षपाः	3.6	हरिणी	2.20
शिक्यम्	4.8	साक्षात्	4.12	हरित्	2.10
शिखा	1.6	सागरः	1.2	हलः	2.25
शितिः	2.10	साङ्काश्यः	3.16	हलः	2.25
शिवः	2.16	साङ्काश्यः	3.16	हलीषा	3.17
शिशुमारः	3.15	सिंहः	2.17	हलीषा	3.17
शिशुमारः	3.15	सिन्धुः	1.2	हिरण्यम्	3.18
शीतन्या	3.5	सिमस्मै	4.11	हृदयम्	3.18
शुकः	2.7	सिमस्मै	4.11		
शुक्लः	1.13	सिमस्मै	4.10		

संक्षेपबोधक सूची

[अकारादिक्रमेण]

अ.को.—अमरकोष
अथ.—अथर्ववेद
अव्य.—अव्ययपद
उणा.—उणादिकोश
उदा.—उदाहरण
ऋ.—ऋग्वेद
का.—काशिकावृत्ति
जै.द.—जैमिनिदर्शन
तु.—तुलनीय
द्र.—द्रष्टव्य
पद.—पदच्छेद
पदम.—काशिकावृत्ति की पदमञ्जरी टीका
पा.—पाणिनीय अष्टाध्यायी
पृ.—पृष्ठ
प्र.—प्रकाश टीका
फि.—फिट्सूत्र
वै.सि.कौ.—वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी
श.कौ.—शब्दकौस्तुभ
शे.—शेखर
समा.—समाधान
सुबो.—वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीस्थ वैदिकी प्रक्रिया की सुबोधिनी टीका
सू.—सूत्र।

○